UNIVERSAL LIBRARY

OU_180154

UNIVERSAL LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 928.9144 Accession No. G H 2792

Author S556

Title शिवाजी
गुरुदेव और उनका आश्रम

This book should be returned on or before the date last marked below.

सत्साहित्य प्रकाशन

# गुरुदेव श्रौर उनका आश्रम

—रवीद्रनाथ ठाकुर श्रौर शान्तिनिकेतन के भाव-पूर्ण संस्करण—

शिवानी

पुस्तक भेंट के निमित्त है

१९६१

सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय
मंत्री, सस्ता साहित्य मण्डल,
नई दिल्ली

पहली बार : १९६१
मूल्य
एक रुपया

मुद्रक
राष्ट्रभाषा प्रिन्टर्स
क्वींस रोड, दिल्ली

# प्रकाशकीय

प्रस्तुत पुस्तक की लेखिका को कई वर्ष तक शान्तिनिकेतन में रहने का अवसर मिला था। वहां रहकर उन्होंने न केवल अध्ययन किया, अपितु आश्रम के प्राण रवीन्द्रनाथ ठाकुर के सान्निध्य का भी पूरा लाभ लिया। उसी काल की बड़ी हीस जीव झाँकी उन्होंने इस पुस्तक के संस्मरणों में उपस्थित की है। पढ़कर मालूम होता है कि गुरुदेव का व्यक्तित्व कितना ऊंचा और प्रखर था और उनकी कर्मभूमि शान्तिनिकेतन का जीवन कितना समृद्ध था।

लेखिका की व्यक्तिगत अनुभूतियां होने के कारण उनके ये संस्मरण कितने भाव-पूर्ण बन पड़े हैं, इसका अनुमान तो पाठक स्वयं पढ़कर ही कर सकेंगे। कई चित्र तो वास्तव में इतने मर्म-स्पर्शी हैं कि उन्हें पढ़ते-पढ़ते आंखें डबडबा आती हैं।

गुरुदेव के निधन के उपरान्त यद्यपि शान्तिनिकेतन में अनेक परिवर्तन हो गए हैं और वहां की कई विभूतियां तिरोहित हो गई हैं अथवा अन्यत्र चली गई हैं, तथापि पुस्तक के विवरण आज भी ताजे और स्फूर्तिदायक हैं।

हमें विश्वास है कि पाठक इस पुस्तक को चाव से पढ़ेंगे और इससे लाभान्वित होंगे।

—मन्त्री

# विषय-सूची


| | | |
|---|---|---|
| १. | गुरुदेव और उनका व्यक्तित्व | ७ |
| २. | गुरुदेव की कर्म-भूमि | ८ |
| ३. | शान्तिनिकेतन की विशेषताएं | ११ |
| ४. | शान्तिनिकेतन की विभूतियां | १[illegible] |
| ५. | आश्रम के पर्व | १[illegible] |
| ६. | एक रोचक प्रसंग | २[illegible] |
| ७. | गुरुदेव की स्निग्ध वाणी | २[illegible] |
| ८. | आश्रम में गांधी-दिवस | २[illegible] |
| ९. | कुछ महत्वपूर्ण उत्सव | २[illegible] |
| १०. | आश्रम के विकास में गुरुदेव का योग | ३३ |
| ११. | गुरुदेव के स्वभाव की विशेषता | ३७ |
| १२. | गुरुदेव का संगीत और कला-प्रेम | ३८ |
| १३. | आश्रम का प्रेमल वायु-मण्डल | ४१ |
| १४. | गांधीजी और गुरुदेव | ४३ |
| १५. | अनेक विभूतियों का आगमन | ४५ |
| १६. | छात्रों का उन्मुक्त जीवन | ४६ |
| १७. | श्रीनिकेतन का मेला | ५४ |
| १८. | खेल-कूद और मनोरंजन | ५६ |
| १९. | आश्रमवासियों के लिए गुरुदेव के गीत | ५९ |
| २०. | छात्रों का अतिथि-प्रेम | ६४ |
| २१. | गुरुदेव की आत्मीयता | ६५ |
| २२. | दण्ड-व्यवस्था | ७० |
| २३. | छात्रों को सुविधाएं | ७१ |
| २४. | 'गुरुदेव आमादेर मां' | ७२ |
| २५. | सादा पर कला-पूर्ण रहन-सहन | ७५ |
| २६. | आश्रम पर काले बादल | ७७ |
| २७. | गुरुदेव चले गये। | ७९ |

# गुरुदेव
# और
# उनका आश्रम

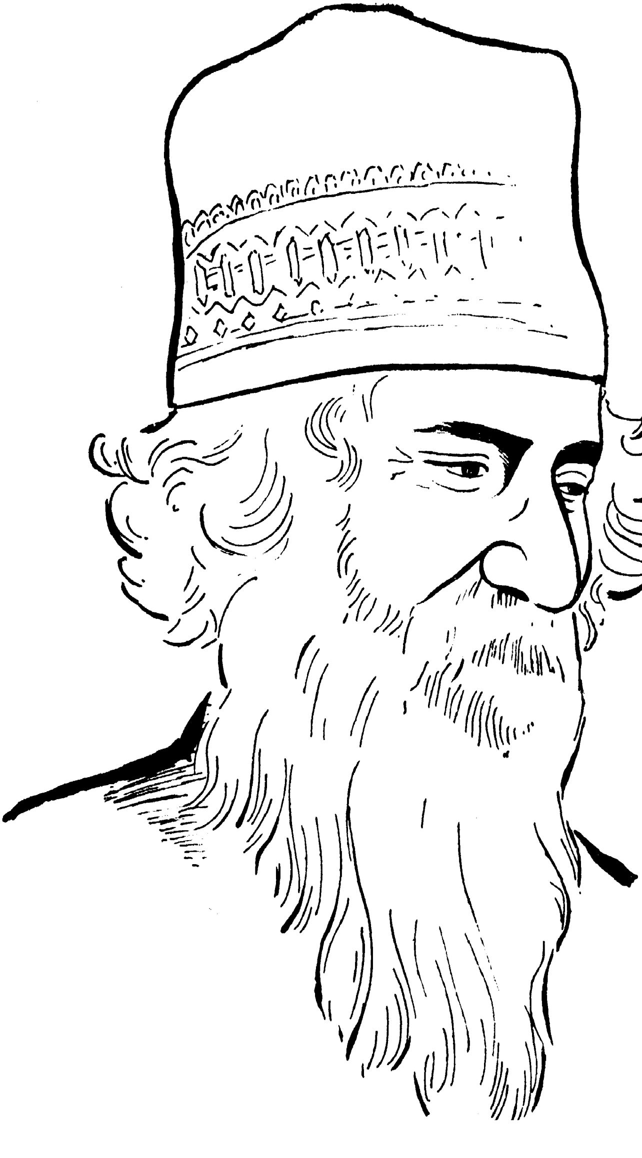

: १ :

# गुरुदेव और उनका व्यक्तित्व

स्फटिक-सा गौरवर्ण, ज्वलंत ज्योति से जगमगाते विशाल नयन, गोरे ललाट पर चन्दन का शुभ्र तिलक, काला झब्बा और काली टोपी। यही थे आश्रमवासियों के हृदय-हार गुरुदेव।

कितना महान व्यक्तित्व और कैसा सरल व्यवहार ! ऊंच-नीच, छोटे-बड़े सब उनके स्निग्ध व्यक्तित्व की छाया के नीचे समान थे। चीन, जापान, मद्रास, लंका के छात्र प्रार्थना की घंटी बजते ही एक कतार में लाइब्रेरी के सामने मौन सिर झुकाकर खड़े हो जाते। उनमें चीनी बौद्ध छात्र फांचू रहता और सुमात्रा का मुस्लिम छात्र खैरुद्दीन भी, गुजरात की सुशीला रहती और सुदूर केरल-वासिनी कुमुदिनी भी। एक मन, एक प्राण, होकर सब उपासना में लीन रहते। कभी कोई अनुशासन भंग करने की धृष्टता न करता। आश्रम के इस संयमित वातावरण का रहस्य था स्वयं गुरुदेव का स्नेह-पूर्ण संचालन।

विश्व-विभूति कवीन्द्र रवीन्द्र थे संगीत, साहित्य

और दर्शन के विचित्र-रूपी शिल्पी, किन्तु आश्रम-वासियों के थे वह गुरुदेव, स्नेही पितामह। कविता, नाटक, उपन्यास, चित्रकला, संगीत, नाटक-परिचालन इन सबसे भी अधिक चिन्ता थी उन्हें अपने प्रिय आश्रम की।

: २ :

## गुरुदेव की कर्मभूमि

विश्वभारती उनकी प्रिय कर्मभूमि थी। छोटे-बड़े का भेद वहां की पावन रांगा माटी में घुल-मिलकर एक हो जाता था। त्रिपुरा के राजकुमार और कूचबिहार की राजकन्या भी सबके साथ काठ की बेंचों पर बैठकर खाना खाते, अपने-अपने आसन लेकर पेड़ों की सुशीतल छाया के तले परम उल्लास से पढ़ने बैठ जाते। बालक रवीन्द्रनाथ जब 'बंगाल ऐकेडमी' में शिक्षा प्राप्त करने गये तो उन्हें अपना नया स्कूल कारागार-सा लगा। उन्होंने इसीके विषय में एक स्थान पर लिखा है, "जो हमें पढ़ाया जाता, कभी हमारी समझ में न आता। न हम सीखने की चेष्टा करते, और न स्कूल के अधिकारियों को ही हमारे न सीखने

की चिंता रहती। अब मेरा स्वयं एक आश्रम है। बहां के बच्चे भी शैतानियां करते हैं, पर वे बालक हैं न ! नटखट तो होंगे ही। और अध्यापक ? वे भी बहुत क्षमाशील नहीं होंगे, किन्तु जब कभी मेरे आश्रम के विद्यार्थी ऐसी कुछ शैतानियां कर दण्ड देने के लिए प्रेरित करते हैं तभी मुझे अपने स्कूली जीवन में की गई शैतानियां स्मरण हो आती हैं।"

यही कारण था कि कभी भी आश्रम के किसी छात्र एवं छात्रा को कड़ी सजा नहीं मिलती थी। अपने आठ-वर्षीय आश्रम-कालीन जीवन में मुझे केवल एक छात्र और एक छात्रा को आश्रम छोड़कर चले जाने का कठोर दंड मिलने का स्मरण है। आश्रम के किसी भी पाठ-भवन (स्कूल) के छात्र या छात्रा पर हाथ न उठाया जाय, यह गुरुदेव का आदेश था; किन्तु इस आदेश को अध्यापकगण कभी-कभी लांघ भी जाते थे। विजन, मंटू घोष जैसे शैतान लड़कों को कभी-कभी 'ढोल गंवार शूद्र पशु नारी' की श्रेणी में सम्मिलित कर लिया जाता था, किन्तु गुरुतर अपराध करने पर ही उन्हें ऐसा दुर्भाग्य प्राप्त होता। ठीक से काम न करने पर या माने याद करके न लाने पर एक कोने में खड़ा कर दिया जाता, पर कोने में मुंह लट-

काये खड़े हैं और पास के पेड़ों के नीचे लगी अन्य कक्षाओं के छात्र-छात्राएं देख रहे हैं, यही क्या कम सजा है ? दूसरी कक्षाओं के छात्रवृन्द की दृष्टि की छुरियां पैनी की जा रही हैं कि कक्षा छूटते ही ताने कसे जायंगे, खिल्ली उड़ाई जायगी ।

और अभी-अभी रसोईघर का नौकर प्रभाकर भी वहीं से होकर निकल गया । मुंह फेरकर हँस रहा था। वह सारे नौकरों में जाकर कहेगा और सब पूछेंगे, "क्यों दिदीमनी, आज कैसे सजा पाकर खड़ी थीं ?"

अपने बाल्यकाल के स्कूली जीवन में शिक्षा-संस्थाओं के यांत्रिक रूप की शिक्षा-प्रणाली में जिन-जिन छोटी-मोटी त्रुटियों को गुरुदेव ने देखा था, उन्हें अपने आश्रम में उन्होंने किसी भी रूप में नहीं रहने दिया था। यहां किसी भी विषय को लेने की पूर्ण स्वतन्त्रता थी। संगीत-भवन की कोई भी छात्रा शिक्षा-भवन (कालेज) की किसी भी कक्षा में आकर पढ़ सकती थी। बालकों के कोमल हृदयों को किताबी बेड़ियों से जकड़ा नहीं जाता था । पुस्तकें थीं, पर बड़ी रोचक, तस्वीरों से भरी, मुलायम जिल्द और मखमली पन्ने । बच्चे ऐसे प्रेम से पुस्तकें खोलकर बैठ जाते, जैसे परीक्षा की पुस्तक नहीं, मिठाई का डिब्बा हो !

शिशु-भवन के नन्हें छात्रों की एक घंटी लगती 'गल्पेर' क्लास' (कहानी का घंटा)। श्री अवनीन्द्र ठाकुर कभी-कभी उनका यह वर्ग लेते तो बड़े-बूढ़ों की भीड़ जुट जाती। ग्रिम्स फैयरीटेल और हेन्स ऐन्डरसन की कलम का जादू फीका पड़कर रह जाता। 'सिनहा-सदन' के सामने बिखरी असंख्य कक्षाएं—कहीं ढीला खद्दर का कुर्ता धोती पहने, अंडी की चादर लपेटे हिन्दी का वर्ग ले रहे हैं आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, शेक्सपियर के नाटकों की विद्वत्तापूर्ण व्याख्या कर रहे हैं जर्मन प्रोफेसर डॉ० ऐलेक्स ऐरनसन, कहीं सांख्य योग और चार्वाक की चर्चा कर रहे हैं प्रोफेसर अधिकारी और कहीं शैलज दा के इसराज के मधुर स्वरों के बीच गूंज रही है रवीन्द्र-संगीत की कोई नई स्वर-लिपि।

: ३ :

## शान्तिनिकेतन की विशेषताएं

ऐसा था गुरुदेव का शान्तिनिकेतन—उनकी पवित्र तपोभूमि का साकार स्वप्न। यहां चहारदीवारियों से घिरी कक्षाएं नहीं थीं। जहांतक दृष्टि जाय, उन्मुक्त नील गगन था। पढ़ते-पढ़ते जी ऊबता तो आसमान पर

चहकते परिन्दों को देखने पर बंदिश नहीं थी; लिखते-लिखते हाथ थक जाते तो क्षण-भर कलम रखकर पास से गुजरते संथाल-दल के अगुवा की मादक वंशी के के स्वर को सुनने पर कोई प्रतिबन्ध नहीं था; रेखा-गणित और बीजगणित के कठिन साध्यों के बीच इधर-

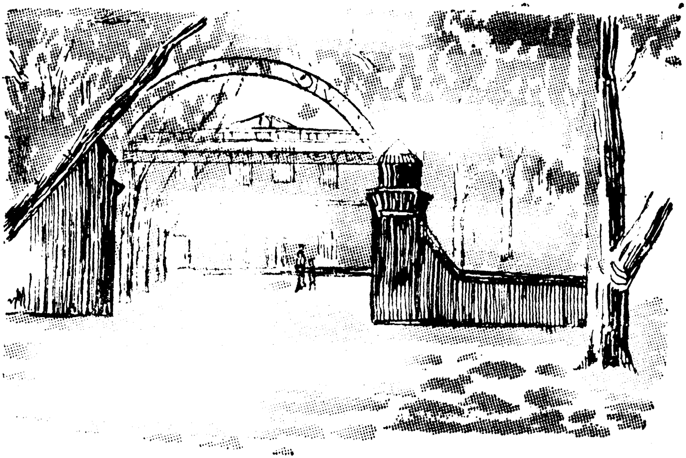

गुरुदेव की कर्मभूमि शांतिनिकेतन का प्रवेश द्वार

उधर देखकर ताजगी पाने पर कोई रुकावट नहीं थी; सामने की डाल पर कबूतर बैठे हैं, या गिलहरी कुटुर-कुटुरकर कुछ खा रही है, यह सब देखते-देखते भी विद्यार्थी पानीपत के तीनों युद्धों की दुरूह तारीखें कंठस्थ कर लेते थे; अकबर की धार्मिक नीति या विलियम

बेंटिक के शासन-कालीन सुधारों का गुरुतर बोझ आश्रम के छात्रों के दुर्बल कंधों पर भी उतना ही था, जितना अन्य शिक्षण-संस्थाओं के छात्रों पर, किन्तु पढ़ने और पढ़ाने की ऐसी अनोखी व्यवस्था थी कि नन्हें मस्तिष्कों पर पढ़ाई बोझ बनकर न रहती। आत्म-संयम उनका आश्चर्यजनक रूप से सचेत रखता।

आश्रम के छात्र-छात्राओं को सूर्य निकलने से पूर्व ही बिस्तर छोड़ देना पड़ता था। इसके लिए तीन घंटियां बजतीं। तीसरी घंटी बजने के बाद यदि कोई न उठता तो सजा मिलती। प्रातःकालीन नाश्ता किये बिना ही उसे कक्षा में जाना पड़ता। नहा-धोकर, अपना बिस्तर लगाकर, सब लाइब्रेरी के सामने खड़े होकर एक साथ प्रार्थना करते। पंद्रह मिनट सुबह और पंद्रह मिनट शाम नित्य यह प्रार्थना-सभा होती।

प्रातःकालीन प्रार्थना के पश्चात सब अपनी-अपनी कक्षाओं में चले जाते। कला-भवन के छात्र एवं छात्राएं कलाभवन की ओर और संगीत-भवन का दल अपनी कक्षाओं में। शिक्षा एवं पाठभवन के दल यत्र-तत्र पेड़ों के तले बिखर जाते और क्षण-भर में सब कोलाहल शान्त हो जाता। घंटा फिर बजता, कक्षाओं में पढ़ाई होने लगती।

: ४ :

# शान्तिनिकेतन की विभूतियां

विज्ञान के छात्र-छात्राओं के लिए एक छोटी-सी प्रयागशाला भी थी, जहां प्रमथ दा जैसे हँसमुख, साथ ही अनुशासन-प्रिय शिक्षक के साथ सब विज्ञान के नित्य नवीन परीक्षण देखते और करते। हाइजीन या शरीर-विज्ञान का अध्यापन-कार्य निभाना पड़ता स्वयं आश्रम के कार्यरत डाक्टरबाबू को। जिन छात्र-छात्राओं ने उन सरल-स्निग्ध व्यक्ति से शरीर-विज्ञान की शिक्षा प्राप्त की है, वे क्या कभी उन्हें भूल सकते हैं? मस्तिष्क की गूढ़ रचना या पसलियों की रहस्यमयी बनावट पर अमूल्य समय नष्ट करने से क्या लाभ? "उसे अपनी पाठ-पुस्तक से पढ़ लेना।" वे अपनी दोनों लम्बी भुजाएं हवा में नचाकर कहते।

"डाक्टरबाबू, एक बार सुना दीजिये वही, वही।" पूरी कक्षा मचल उठती।

और जैसे मुंहलगे बालक की हठीली फरमाइश स्नेही पिता को भी कभी-कभी पूरी करनी पड़ती है, डाक्टरबाबू भूल जाते कि वह हाइजीन का वर्ग ले रहे हैं। अपनी बड़ी-बड़ी लाल डोरीदार आंखों को भावना

से मूंदकर, आनन्द-विभोर होकर, गाने लगते --

**'कोलकाता केवल भूले भरा**
**मरि हाय रे !'**

'कलकत्ता तो भूलभुलैयां है ।
हाय बलि जाऊं रे !'

कैसा सुरीला कंठ और कैसा दर्दीला स्वर ! अध्यापक गा रहे हैं और छात्रवृंद मंत्रमुग्ध होकर सुन रहे हैं । कक्षा अस्पताल में होती । कभी-कभी मरीज भी उठ-उठकर रसीले स्वर को सुनते और झूम उठते। आश्चर्य है, हाइजीन की ऐसी रसीली सरस शिक्षा पाकर भी डाक्टरबाबू के किसी छात्र या छात्रा ने उनके विषय में कभी कलकत्ता विश्वविद्यालय में मुंह की नहीं खाई । अपनी जर्जर खंजड़ साईकल पर एक गांव से दूसरे गांव तक जा-जाकर डाक्टरबाबू ने न जाने कितने मलेरिया-यकृत-प्लीहा-पीड़ित रोगियों की सेवा की । सीधा-सादा वेश, उड़ते-रूखे बाल और सदा गाते-गुनगुनाते चले जा रहे हैं । आधी रात को हम सुनते आश्रम के आमलकी कानन से गूंजता उनका सुरीला कंठ-स्वर—'कोलकाता केवल भूले भरा, मरि हाय रे !' सामान्य-सी तनखा शायद उनके परिवार के पालन-पोषण को भी पूरी नहीं पड़ती होगी । पर ऐसे ही थे

गुरुदेव के कर्मठ सैनिक, ऐसी ही थी उनकी ममता की कच्ची डोर, जिसे तोड़कर आश्रम के किसी भी अध्यापक को अन्यत्र जाने की कभी इच्छा नहीं होती थी।

एक डाक्टरबाबू ही नहीं, आश्रम के सब अध्यापकों का ऐसा ही स्नेह अपने छात्र-छात्राओं पर था। हिन्दी के वर्ग के बीच से ही हमने बड़े पंडितजी (श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी) को मनाकर छुट्टी मांग ली। कारण था अति सामान्य। बहुत भूख लगी थी। छुट्टी ही नहीं मिली, समस्या का समाधान भी हुआ। आगे-आगे पंडितजी और पीछे-पीछे भूखी कक्षा। पंडितजी के घर गये, भाभीजी ने बड़ा-सा टिन उतार दिया—मूड़ी से लबालब भरा, कच्चे तेल में सानकर हरी मिर्च कतर दी गई। हम खा रहे हैं और पढ़ाई दूसरे दिन के लिए स्थगित कर दी जाती है।

राजनीति-शास्त्र का वर्ग हो रहा है। ले रहे हैं श्री अनिल चंदा। जितने ही हँसमुख आनन्दी हैं अनिल दा, उतनी ही जल्दी गुस्सा भी आ जाता है; पर 'मूड' देखकर उनको कक्षा इशारा करती है—आज आपके यहां फिश-कटलेट बने हैं। साथ ही यह भी सूचना दे दी जाती है कि आज पढ़ने में किसी का भी चित्त नहीं लग रहा है। लाचार होकर पढ़ना बन्द कर अनिल दा

ग्राश्वासन देते हैं कि फिश-कटलेट मिलेंगे, ग्रौर मिल भी जाते हैं।

जहां गुरु-शिष्य के बीच ऐसा मैत्रीपूर्ण व्यवहार हो, वहां ग्रनुशासन-हीनता का प्रश्न उठता ही क्यों ? आश्रम-सम्मेलिनी की पिकनिक होती, जिसके विराट दल में देश-विदेश के छात्र-छात्राओं का झुंड कंधे-से-कंधा मिलाकर उल्लास से परिपूर्ण लौटता 'ग्रामादेर शान्तिनिकेतन' गाते-गाते। बीच-बीच में 'गुरुजी की फतेह' से ग्राकाश गूंज उठता। जिस झुंड के अगुवा हैं गुरुदयाल मल्लिक-जैसे श्रद्धेय व्यक्ति, उसमें भला कैसी ग्रशिष्टता ! सुन्दरी सहपाठिनियों को लेकर कोई भद्दी छींटाकशी नहीं, कोई छेड़खानी नहीं, मानो किसी सुखी परिवार का अलमस्त दल मेला देखकर लौट रहा हो !

: ५ :

# आश्रम के पर्व

गुरुदेव को 'बैतालिक' करवाने का बड़ा शौक था। चांदनी रात है। फाल्गुनी पूर्णिमा से धुलकर ग्राश्रम झकझक चमक रहा है। प्रकृति ने ऐसी सुन्दर सौगात

भेजी है और आश्रमवासी स्वीकृति भी न दें ! सूचना आती है कि सब आश्रमवासी 'घंटातले' एकत्र हों।

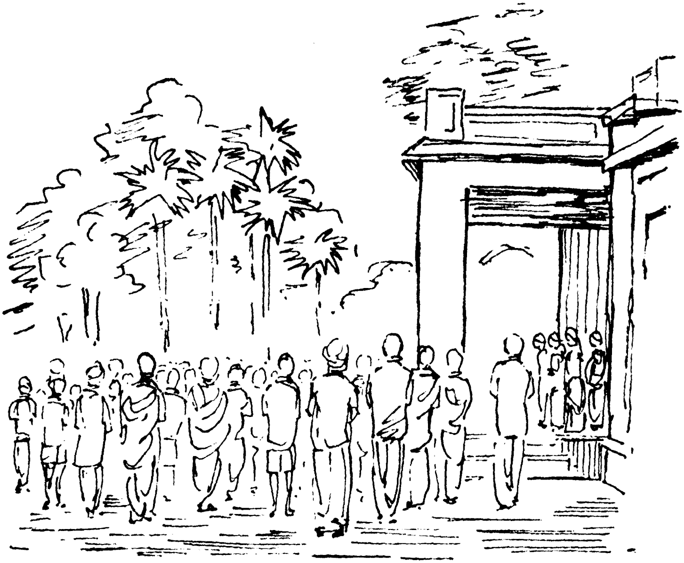

बेतालिक का एक दृश्य

रात्रि का खाना खा-पीकर सब चले आ रहे हैं। कोई भी इस दल में आ सकता है। हमारे छात्रावास की नौकरानी ननीबाला; रसोईघर के नौकर नगेन, प्रभाकर, हरिहर; शिक्षा-भवन, कला-भवन, संगीत-भवन के छात्र-छात्रा-गण, विराट दल आ जुटता है। गाना है—

**"फागनेर पूर्णिमा एल कार लिपि हाथे—"**

—फागुन की यह पूर्णिमा आज किसकी लिपि लेकर आई है ? पूरे आश्रम की परिक्रमा कर दल एक बार उत्तरायण तक अवश्य जाता है। आश्रम-गुरु की वाणी संगीत मुखर होकर उन्हीं तक पहुंचती है। दल गा-बजाकर लौट आता है। उस दल में और कोई हो-न हो, हमारा बिहारी रसोइया सरजू अवश्य रहता। आश्रम में दक्षिण की कुछ लड़कियों को भोजन-सम्बन्धी असुविधा हुई। एक छात्रा लक्ष्मी कान्तम्मा रेड्डी अपने साथ एक दक्षिणी रसोइये 'चेल्लम' को नीलोर से ले आई तो उसकी नियुक्ति आश्रम के रसोईघर में कर दी गई। दक्षिण से दूर बसी बंगभूमि में भी अब दक्षिणी छात्र-छात्राओं को 'रसम', 'साम्बर' और 'उपमा' उपलब्ध हो गईं। फिर क्या था, गुजराती, सिंहली और चीनी रसोईघर भी बन गये। उत्तर प्रदेश का कोई रसोइया उतनी दूर आने को तैयार नहीं हुआ, तभी हमें मिल गया सरजू। छपरा का रहनेवाला था। अब हमारे लिए भी अरहर की दाल और बैंगन का भुरता बनने लगा। सरजू को संगीत से भी विशेष प्रेम था और रवीन्द्र-संगीत तो आश्रम के पेड़-पत्तों में भी गूंजता था। आएदिन रिहर्सल होते, चट-पट सरजू भी एकाध पंक्ति सीख लेता, पर रवीन्द्र-संगीत में उसने कुछ सर्वथा नवीन प्रयोग किये थे, जैसे—

"पागला हावार बादल दिने रामा
पागल आमार मन जेगे उठे।"

हर पंक्ति में वह 'रामा' अवश्य जोड़ देता। कभी भी किसी नाटक की सूचना मिलती तो वह पांच बजे ही रात का भोजन बनाकर रख देता और प्रायः हम देखते कि दर्शक-गण के बीच सिर पर लाल गमछा बांधे सरजू महाराज बड़ी शान से मुस्करा रहे हैं। प्रत्येक वर्ष आश्रम में नाटक-समारोह होता। 'चित्रांगदा' हो या 'चंडालिका', 'मायेर खेला' हो या 'ताशेर देश' स्वयं गुरुदेव उसकी संचालना करते। महीनों उत्तरायण में रिहर्सल चलता। उत्तरायण के बड़े-से कमरे में कोने में एक तख्त बिछा रहता। उसीपर गद्दी और मसनद का सहारा लेकर स्वयं गुरुदेव बैठते। एक ओर इसराज लेकर शांति दा, शैलेज दा और छात्र-छात्राओं का दल। चमकते लाल फर्श पर घुंघरू बज उठते। दक्षिण के नृत्यगुरु केलू दा (केलू नायर) को संगीत-नाट्य के एक-एक गीत का भावार्थ समझाते गुरुदेव, जिससे गीत की एक-एक पंक्ति उनके नृत्य में मुखर हो उठे और जिन्होंने केलू दा को 'जल दाओ आमार जल दाओ' कहकर बूड़ी दी (श्रीमती नंदिता कृपलानी) से जल मांगते देखा है, वे ही समझ सकते हैं कि गुरुदेव की कविता

नृत्य में कैसे मुखर हो उठती थी। प्यास से व्याकुल पथिक की तृषा दर्शकों तक को व्याकुल कर देती। ऐसे ही कुएं से पानी खींचती बूड़ी दी क्षण-भर को स्वयं को भी भूल जाती। सीमेंट का निर्जीव मंच जीवंत हो उठता। शून्य दृष्टि से इधर-उधर देखती वह कुएं में रसरी डाल देतीं। रिक्त हाथों में रसरी स्पष्ट हो उठती और कुएं से पानी खींचकर जलदान देती बूड़ी-दी सचमुच अपने पितामह के संगीत-नाट्य को धन्य कर देतीं। इसीसे जब इतने यत्न से सजे-संवरे नाटक कलकत्ता के छाया थियेटर में खेले जाते तो बड़े-बड़े कला-पारखी दर्शकगण दंग रह जाते—यह तो नाटक नहीं, जैसे स्वयं ही अर्जुन और चित्रांगदा जीवंत होकर रंग-मंच पर उतर आये हैं। नन्दिता दी, ममता भट्टाचार्य, हांसू, सेवा मायती, अनीता वरुआ, वनलीला जैसे कला-कारों की प्रतिभा को चमकाने का श्रेय था स्वयं गुरुदेव को। एक बार कटक की किसी साहित्य-सभा में गुरु-देव गये थे। वहां एक दुबली-पतली लड़की ने उनके सम्मुख स्वागत-गान गाया। उसका मधुर कंठ सुनकर गुरुदेव मुग्ध हो गये। पूछने पर ज्ञात हुआ, लड़की ने ऐसे परिवार में जन्म लिया था, जहां दो मूठ भोजन भी मुश्किल से जुटता था, संगीत-शिक्षा कैसे होती?

सुन-सुनकर ही सीख लेती थी बेचारी। गुरुदेव ने उसे सहायता का वचन दिया और कुछ ही दिन बाद वह हमारे आश्रम में आ गई और उसके रहने, खाने-पीने एवं कपड़ों का आश्रमिका संघ की ओर से प्रबन्ध हो गया। वह संगीत-भवन में रवीन्द्र-संगीत, सितार और अन्य विषयों की शिक्षा पाने लगी। इसी प्रकार एक अंधा छात्र कालू भी निःशुल्क शिक्षा प्राप्त करता रहा।

आश्रम में आएदिन साहित्य-सभाओं का आयोजन होता। छात्र-छात्रागण गुरुदेव के पास जाकर उन्हें

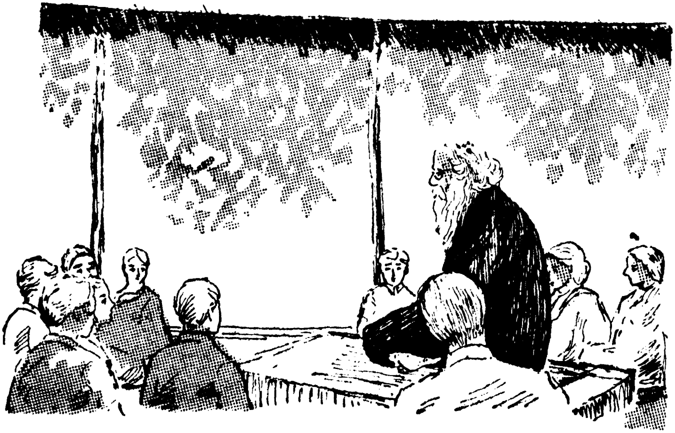

गुरुदेव स्वयं कक्षा पढ़ाते हुए

घेर लेते, "आपको हमारी सभा का सभापति बनना ही होगा।" हर महीने हर भवन की एक साहित्य-सभा

होती और उतनी सारी सभाओं का सभापतित्व ग्रहण करना गुरुदेव के लिए सम्भव न होता, पर वह सबका मन रख लेते--किसीको सभा सजाने के लिए उत्तरायण के बगीचे के अनमोल गुलाब देकर, किसीको दूसरी सभा में आने का आश्वासन देकर।

: ६ :

# एक रोचक प्रसंग

गुरुदेव के पास जाने में आश्रम के किसी भी छात्र या छात्रा को कोई रोकटोक न रहती। किसी छात्र को भोजन-सम्बन्धी कष्ट हो या मनपसन्द विषय लेने में कोई अड़चन, सबको सुलझाने के लिए गुरुदेव के पास समय रहता। एक बार ऐसी ही एक सामान्य-सी उलझन लेकर हम छात्र-छात्राओं का दल उनके पास गया, जिसका स्मरण कर आज स्वयं लज्जा से सिर झुक जाता है। विश्व-कवि से शिकायत थी हमें भोजन में नित्य 'आलू-पटल' (आलू-परवल) के मिलने की। उत्तर प्रदेश के छात्र भरे-बैंगन और भिंडी को तरसने लगे, बिहारी छात्राओं के चेहरे सूख गये, दक्षिणी विद्यार्थी वर्ग में भी घोर असंतोष फैल गया। तबतक

आश्रम में केवल दो ही रसोई-विभाग थे—सामिष और निरामिष। सामिष को तो तब भी मछली, अंडा और मांस का सहारा था, पर निरामिष-भोजियों की बड़ी दुर्दशा हो गई। सूखा आलू-परवल, रसेदार परवल का 'डालना', भाजा परवल, मानों आलू-परवल छप्पर फाड़कर बरसने लगा। आश्रम के बड़े-से बोर्ड पर एक आलू और एक परवल की बड़ी-सी तस्वीर बनाकर 'धिक आलू, धिक परवल' भी लिख दिया गया, पर आश्रम के रसोई-विभाग के कान पर जूं भी न रेंगी। इसीसे सब मिलकर उत्तरायण की ओर भागे। गुरुदेव का हम अन्य प्रान्तीय छात्र-छात्राओं पर विशेष स्नेह था। देखते ही बोले, "कीरे कैनोऐ शोछिस ?"—क्यों रे, क्यों आये हो ?

सबने नित्य दोनों बेला आलू-परवल मिलने का दुखड़ा रोया। किसीको यह ध्यान ही नहीं रहा कि गुरुदेव के पास ही बैठे हैं 'आलू दा'। 'आलू दा' का वास्तविक नाम किसीको पता नहीं था। वह गुरुदेव के बहुत मुंहलगे थे और सदा उनके साथ रहते थे। बाद में गुरुदेव के जीवनकाल में ही उनकी मृत्यु हो गई, जिसका गुरुदेव को बहुत धक्का लगा था। आलू दा थे बड़े ही हँसोड़। गेहुंआ रंग, कुछ-कुछ सूजी आंखें और

सदाबहार चेहरा। 'ताशेर देश' में उनका अभिनय देखकर लोग हँसते-हँसते दुहरे हो जाते। हम लोग आलू-परवल का रोना रो ही रहे थे कि एकाएक गंभीर होकर आलू दा खड़े हो गये और दोनों हाथ जोड़कर, आंखों में आंसू भरकर, गुरुदेव से बोले, "आज्ञे आमी आर की पारी थाकते, एई चोललाम, पटल थाकूक पड़े, आलू एई गैलो।" अर्थात्--"महाराज, अब क्या मैं यहां रह सकता हूं ? यह गया ! परवल पड़ा रहे—आलू यह गया !" पटल (परवल) आलू दा के छोटे भाई थे। वह पागल हो गये थे और हाथ में एक लालटेन लिये पूरे आश्रम में चक्कर लगाते घूमा करते थे।

आलू दा की बात सुनते ही हमारे कहकहों में आलू-परवल की शिकायत बह गई। हाथ पकड़कर आलू दा बिठा दिये गए, पर उसी दिन से हमपर आलू-परवल की वर्षा भी बन्द हो गई। कौन सोच सकता है कि आज जिसके यश की पताका दिग-दिगंत में फहरा रही है, उन्होंने कभी अपने नादान छात्र-छात्राओं के आलू-परवल का सामान्य-सा झगड़ा भी निबटाया होगा !

: ७ :

# गुरुदेव की स्निग्ध वाणी

आश्रम के एक तरुण छात्र हरिशंकर की पोखर में तैरते समय डूबकर अचानक मृत्यु हो गई थी। गुरुदेव उन दिनों अस्वस्थ थे, पर हरिशंकर की मृत्यु की शोक-सभा उपासना-मंदिर में हुई तो स्वयं चले आये। मुझे आज भी याद है, अंधे छात्र कालू ने उनका गीत गाया--

'जे फूल ना फूटिते
झरे छे धरनी ते--
जे नदी मरुपथे हाराल धारा--
जानी हे जानी ताओ हौय नीहारा...'

—"जो फूल खिलने से पहले ही मुरझाकर धरती पर गिर गया, जिस नदी ने मरुपथ में अपनी धारा खो दी, मैं जानता हूं कि वे व्यर्थ नहीं हुए।"

गुरुदेव बड़ी देर तक कुछ नहीं बोल सके। गला भर आया। उनके आश्रम का एक छात्र नहीं रहा था। उनके सुखी परिवार का एक सदस्य जैसे चला गया था। एक-दो शब्द कहकर आगे वह बोल नहीं सके। तब खितिमोहन बाबू (स्वर्गीय आचार्य क्षितीशमोहन

सेन) उठे। उन्होंने यम-नचिकेता-संवाद सुनाया और अपनी गुरु-गम्भीर वाणी में नित्य की उपासना दुहराई——

**असतो मा सदगमय**
**तमसो मा ज्योतिर्गमय—**
**असते ते आमादेर सत्ये निये जाओ——**
**अंधकारे थेके आमादेर आलो ते निये जाओ।**

बड़ी स्निग्ध वाणी थी उनकी। क्षण-भर को हरिशंकर की मृत्यु को उनके मीठे स्वर ने भुला दिया। बुधवार की उपासना में गुरुदेव बहुत कम आ पाते थे। इसीसे अधिकतर उपासना क्षितिमोहनबाबू ही कराते। कुछ ऊंची बंधी धोती, ढीला कुरता, भारी-भारी देह, चिकना-चुपड़ा गोरा चेहरा। पैरों में पहनते थे खड़ाऊं। दूर से ही लोग जान जाते कि क्षितिमोहन-बाबू आ रहे हैं। उनके घर के आंगन में एक बहुत ही मीठे बेर का पेड़ था, जिसके फलों को तोड़-तोड़-कर खाने पर किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं था। हम लोग जब जी में आता, जाते और खूब खाते। ऐसा मीठा बेर फिर कभी खाने को नहीं मिला। गृह-स्वामी के स्वभाव की मिठास शायद उस पेड़ ने भी ग्रहण कर ली थी। कभी-कभी अपनी पौत्री सुनीपा को पुकारकर वह और भी कई चीजें मंगवा देते, तेतु-

लेर आचार (इमली का अचार), छौंके चने आदि। सुनीपा हमारी ही कक्षा में पढ़ती थी। मित्रमंडली की अच्छी खासी दावत हो जाती।

: ८ :

## आश्रम में गांधी-दिवस

आश्रम में गांधी-दिवस भी बड़े समारोह से मनाया जाता। उस दिन पूरे आश्रम के नौकरों को छुट्टी दे दी जाती। सब काम छात्र-छात्राएं स्वयं करते। पहले दिन नोटिस बोर्ड पर एक सूची टंग जाती—किनको रसोई की सफाई करनी है, कौन सड़कों की सफाई की टोली में है, शौचगृह, स्नानागार के चौ-बच्चे, सबको रगड़-रगड़कर दर्पण-सा चमकाया जाता। कमर में आंचल खोंसे दल-के-दल जुटे हैं। कोई आलू का पहाड़ लगाये छील रही है। कोई प्याज का मसाला पीसते-पीसते आंखें पोंछ रही है। सड़कों की सफाई अलग हो रही है। शाम को रसोई के नौकरों की कबड्डी होगी। दिनभर हँसी-खुशी और आमोद-प्रमोद में कट जाता। दूसरे दिन किसीकी अंगुली पर पट्टी बंधी होती, किसीका पैर लंगड़ाता, किन्तु किसीको भी

पिछले दिन की थकान-भरी दिनचर्या के लिए शिकायत नहीं होती।

: ६ :

# कुछ महत्वपूर्ण उत्सव

आश्रम के सब उत्सवों में महत्वपूर्ण तिथि थी सातवीं पौष। कुछ दिन पहले से ही बैलगाड़ियों में लदकर बड़ी-बड़ी चरखियां, जिन्हें हम 'नागरदोला' कहते थे, आने लगतीं। चूड़ियों की दुकानें, मिट्टी के बर्तन, श्रीनिकेतन से भांति-भांति की रंगीन साड़ियों की दुकानें, खिलौने लेकर बिसाती, संथाल-गहनों का अनमोल खजाना लेकर संथाली आ जुटते। शांतिनिकेतन के उपासना-मन्दिर के आगे चलकर अस्पताल जाने की सड़क से लेकर टाटा-भवन तक मेला जुट जाता। तीन-चार दिन की छुट्टी हो जाती। दूर-दूर से लोग चले आते, प्राक्तन छात्र-छात्रागण, अभिभावकगण और अनेक सम्मानित अतिथि। लड़कियों की टोलियां बना दी जातीं। कुछ अतिथियों को आश्रम घुमातीं, दर्शनीय स्थल दिखाने ले जातीं, कुछ उनके भोजन के समय उपस्थित रहकर उन्हें यत्न से खिलातीं। लड़कियों के

छात्रावास का एक बड़ा कमरा खाली कर फूस बिछा दिया जाता और आश्रम में इस विशेष उत्सव का आनन्द छा जाता। सातवीं पौष की उपासना स्वयं गुरुदेव कराते। बाद में अस्वस्थ हो जाने पर एक-दो बार नहीं आ सके थे। मेले की धूम का कहना क्या! वर्ष में एक दिन तो पान खाने को मिलता, फिर भला क्यों चूका जाता! पान से होंठ लाल हैं, हाथ में एक-एक छड़ी है, कोई नागरदोला की चर्खियों का आनन्द ले रही हैं तो कोई संथाली-गहनों की दूकान घेरकर बैठी हैं—ढोल के आकार के जंजीरों से भरे भारी-भारी संथाली बुंदों की बिक्री ही उस मेले में सबसे अधिक होती। कोई भी छात्रा ऐसी न होती, जिसके कान में एक जोड़ी संथाली बुंदे शोभा न दे रहे हों। कान है कि भारी चांदी के भार से टूटा जा रहा है, पर चेहरे पर शिकन नहीं। कोई मिट्टी के बर्तन ले रही हैं, किसीने 'लबाद' (खजूर का गुड़) की चार टिकियां खरीद ली हैं। एक ओर कुछ छात्राओं ने मिठाई-नमकीन का स्टॉल खोल लिया है। स्वयं बूड़ी दी आलू-टिकियां तल रही हैं, गुजराती छात्राओं ने स्वादिष्ट गुजराती व्यंजन बना लिये हैं और दक्षिणी छात्राएं एक ओर बना रही हैं गोले की चटनी। इसी मेले में

एक बार सर अकबर हैदरी आये और छात्राओं ने एक समोसा उनको दस रुपये में बेचा तो हँसकर बोले, "अच्छा है, यहां सोहनहलुआ नहीं बिकता, नहीं तो शायद जेब में पैसे भी नहीं रहते दाम चुकाने को।" सातवीं पौष के इस मेले में आश्रम के ओर-छोर रंगीन हो उठते।

इस तिथि का आश्रम-जीवन में विशेष महत्व था। गुरुदेव के पिता महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर ने शांतिनिकेतन की जमीन और कुछ इमारतों का एक ट्रस्ट बना दिया था, जिसमें एक 'ब्राह्म विद्यालय', पुस्तकालय एवं सातवीं पौष के दिन उस आश्रम में मेले का एक विशेष उत्सव मनाने का आदेश था। उनके आदेशानुसार आश्रम के उद्घाटन की तिथि भी (२३ दिसम्बर सन् १९०१) सातवीं पौष को नियत की गई थी। अपनी संचित विभिन्न पुस्तकों को लेकर गुरुदेव ने आश्रम-पुस्तकालय की स्थापना की। धीरे-धीरे उसी पुस्तकालय ने इतनी उन्नति की कि पुस्तकें रखने के लिए भी स्थान नहीं रहा। गुरुदेव के मित्र ने चार छात्रों को सर्वप्रथम आश्रम में पढ़ने के लिए भेजा, पांचवें छात्र बने श्री रथीन्द्रनाथ ठाकुर, गुरुदेव के पुत्र। सातवीं पौष को आश्रम में प्रथम छात्र-मंडली ने प्रवेश पाया। इस

प्रकार वह पुनीत तिथि सदा के लिए आश्रम के इतिहास में अमर होगई। आश्रम की नींव धीरे-धीरे सुदृढ़ होती

पुस्तकालय

गई, दूर-दूर से विद्यार्थी आने लगे और सातवीं पौष का मेला हर साल नई बहार और नई उमंगों से मनाया जाने लगा।

सातवीं पौष ही नहीं, और भी अनेक उत्सवों से आश्रम सदा गुलजार रहता। 'शरदोत्सव', 'वर्षामंगल', 'माघोत्सव', आदि। एक बार सुदूर दक्षिण की एक छात्रा ने आश्रम की एक पत्रिका में अपने लेख में लिखा था—"शांतिनिकेतन से घर लौटना ऐसा लगता है, जैसे हम घर से बिछुड़ रहे हों।"[1] यही अनुभव आश्रम के

1 Going home from Santiniketan is like going from home.

प्रत्येक छात्र एवं छात्रा को होता था। कोई भी ऐसी छात्रा या कोई भी ऐसा छात्र न होगा, जिसने आश्रम के पवित्र वातावरण में रहकर आश्रम-गुरु के महिमा-मय व्यक्तित्व से कुछ-न-कुछ ग्रहण न किया हो। आश्रम के छात्र-छात्राओं पर शांतिनिकेतन की विशिष्ट छाप स्वयं ही लग जाती। आश्रम के नंदन-कानन में जिन असंख्य छात्र-छात्राओं ने अपने जीवन के अमूल्य दिवस बिताये हैं, वे ही जान सकते हैं कि उनकी विश्वभारती और उनके देवतुल्य गुरु का उनके हृदय में कितना उच्च स्थान था।

: १० :

# आश्रम के विकास में गुरुदेव का योग

जिस आश्रम की स्थापना केवल पांच छात्रों को लेकर हुई थी, वहां सैकड़ों छात्र-छात्राओं का दल ज्ञानार्जन कर रहा था। किन्तु कितना त्याग किया था इस आश्रम के लिए गुरुदेव ने।

जब पहले-पहल आश्रम बना, विद्यार्थियों से कोई फीस नहीं ली जाती थी। यही नहीं, उन्हें कपड़ा, पुस्तक एवं खाना-पीना भी आश्रम की ही ओर से मिलता था।

महर्षि देवेद्रनाथ के ट्रस्ट से अठारहसौ रुपया आश्रम को मिलता था, गुरुदेव की मासिक आय भी साधारण थी। कहा जाता है, उनकी पतिव्रता पत्नी ने स्वेच्छा से अपने कई गहने बेचकर आश्रम के खर्चे में लगा दिये। सन् १९०२ में उनकी मृत्यु हुई तो गुरुदेव की अवस्था केवल इकतालीस वर्ष की थी। अपने पांच बालकों का भार ही नहीं, आश्रम के अनेक बालकों का भार उनपर था। गुरुदेव के सबसे छोटे पुत्र केवल आठ वर्ष के थे। आश्रम की आर्थिक अवस्था बहुत अच्छी नहीं थी। साथ ही ईश्वर भी उनकी कठोर परीक्षा ले रहा था। पहले महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर की मृत्यु हुई। दो विवाहित पुत्रियां जाती रहीं और उनके सबसे छोटे पुत्र की मुंगेर में हैजे से मृत्यु हो गई। अपने प्रिय पुत्र और पुत्रियों की मृत्यु के दुःख को भी उन्होंने आश्रम को गढ़ने-संवारने में भुला दिया। अपनी पुत्रियों पर उनका अत्यन्त स्नेह था, विशेषकर बेला पर। कहा जाता है, जब वह क्षय रोग की चपेट में आ गईं तो गुरुदेव ने उनकी दिन-रात सेवा की। उनके लिए वह कहानियों का कथानक रचते और लिखने के लिए प्रोत्साहित करते, किन्तु उनकी सेवा और स्नेह भी मृत्यु को नहीं जीत सके। बड़ी पुत्री रानी की भी क्षय से पहले ही मृत्यु हो गई थी। शोक, मृत्यु और

विछोह ने उनको कर्म-पथ से विचलित नहीं किया। उनकी कलम अबाध गति से चलती रहती। मृत्यु भी उनकी अमर लेखनी की गति को कुंठित नहीं कर सकी। उनके पुत्र श्री रथीन्द्रनाथ ठाकुर ने अपने पिता के संस्मरण लिखते हुए एक स्थान पर लिखा है, "मेरे पिता के संकट और महान दुःख के दिनों में उनकी कलम ने हार नहीं मानी। जब वह रानी के विषम रोग से लड़ते, उसे एक पहाड़ से दूसरे वायु-परिवर्त्तन के स्थल पर ले जाते थे, वह बराबर लिखते रहे—कभी 'चोखेर बाली' (आंख की किरकिरी) और कभी 'नौका डूबी'। पिताजी कभी भी एक उपन्यास को एक बार ही लिखकर खतम नहीं करते थे। एक-एक परिच्छेद लिखते जाते और किसी पत्रिका में छपने भेजते रहते। इस प्रकार धारावाहिक रूप में उनके उपन्यास पूरे होते। कितनी ही विरोधी परिस्थितियां हों, कितना ही बड़ा मानसिक आघात हो, सम्पादकों को उनके उपन्यास की दूसरी किस्त के लिए कभी रुकना नहीं पड़ता।"

कहते हैं, उनके साहित्यिक जीवन के प्रारम्भ में एक दिन किसीने उनके पिता महर्षि देवेन्द्रनाथ से कह दिया कि युवक रवीन्द्रनाथ कविता लिखते हैं और वह भी अन्य तरुण कवियों की-सी प्रेम की कविता नहीं,

भक्ति-भावना से सराबोर कविताएं लिखी हैं उन्होंने। महर्षि ने एक दिन नवीन कवि को बुला भेजा। महर्षि

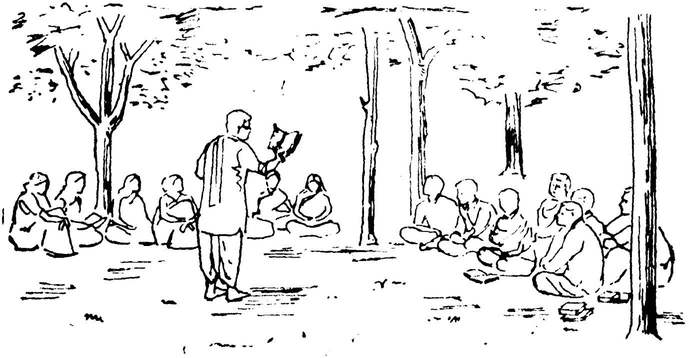

उन्मुक्त वायुमण्डल में शिक्षा

आंखें बन्द करके आनन्द-विभोर होकर सुन रहे थे और रवीन्द्रनाथ एक के बाद एक कविता-पाठ किये जा रहे थे। जब वह कविताओं को गाने लगे तो महर्षि गद्गद् कंठ से बोले, "काश, मैं राजा होता, तब शायद तुम्हें इन कविताओं का उचित मूल्य दे सकता।" इन्हीं कविताओं का संकलन बाद में 'नैवेद्य' के नाम से प्रकाशित हुआ।

: ११ :

# गुरुदेव के स्वभाव की विशेषता

गुरुदेव को क्रोध आता तो दूध के उफान की भांति स्वयं ही शान्त भी हो जाता। एक बार वह ग्रीष्मावकाश में अलमोड़ा आये। साथ में उनकी पुत्रबधू बोठान (श्रीमती प्रतिभा ठाकुर) और दोनों पौत्रियां भी थीं। उनको अभिनन्दन-पत्र देने के लिए अलमोड़ा के मिशन स्कूल में बड़ा भारी जलसा किया गया। समारोह का आरम्भ हुआ 'वन्देमातरम्' गान से। 'वन्देमातरम्' की सर्वथा नवीन स्वर-लिपि सुनकर ही खटका हो गया कि अब खैर नहीं है। अजब-सी बेसुर और बेलय की स्वर-लहरी सुनकर गुरुदेव बिगड़ गये। वहां तो कुछ नहीं बोले, किन्तु रास्ते भर कहते आये; "बड़े शर्म की बात है कि तुम लोग इन्हें वन्देमातरम् भी ठीक से नहीं सिखा पाईं।" किन्तु थोड़ी ही देर बाद उनका क्रोध शान्त हो गया। ऐसे ही एक बार उन्होंने एक गीत को तोड़-मरोड़कर गाये जाने पर किसी सज्जन को बुरी तरह से फटकार दिया था, "कृपया अब मेरे गाने पर स्टीम रोलर मत चलाना।"

: १२ :

# गुरुदेव का संगीत और कला-प्रेम

यदि कोई गुरुदेव के गीतों को मन-प्राण एक कर गा लेता तो उसे उनके आशीर्वाद का पुरस्कार भी मिलता। अपनी एक ऐसी ही दक्षिणी छात्रा सावित्री दी के लिए उन्होंने दक्षिणी संगीत के स्वरों में गीत लिखे। खुकू दी (अमिता देवी) की गूंजती स्वर-लहरी में, जिन्होंने उन्हें गुरुदेव के सम्मुख 'ओ अनाथेर नाथ' गाते सुना है, या 'मोहर' (कनिका बनर्जी) को 'आमार हियार मांझे लुकिये छिले' गाते सुना है, वे ही समझ सकते हैं कि गुरुदेव कितने ध्यानमग्न होकर संगीत में डूब जाते थे। आश्रम में न आधुनिक 'माइक' थे, न अन्य वाद्ययंत्रों का वह जमघट; किन्तु शत-शत सुरीले कंठों की माधुरी ही सुननेवालों को झुमा देती। विशेष अवसरों के लिए गाने के रिहर्सल लेती स्वयं गुरुदेव की भतीजी श्रीमती इन्दिरादेवी चौधरानी। किसी समय वह अपने सौंदर्य के लिए प्रसिद्ध थीं। उनकी किसी मुग़ल कला-कृति-सी मुखछवि को देखकर ही उनका नाम रख दिया गया था 'बीबी'। रवीन्द्र-संगीत की एक-एक बारीकी समझा-समझाकर वह बड़े यत्न से हमें सिखाती थीं।

रवीन्द्र-संगीत के अलावा हिन्दुस्तानी पद्धति की संगीत-शिक्षा की भी व्यवस्था थी। नृत्य में भी मनीपुरी, कथाकाली नृत्य के कुशल शिक्षक थे। साथ ही मृणालिनी स्वामीनाथन (मृणालिनी साराभाई) ने जावा नृत्य के भी कई प्रदर्शन कर नवीन प्रयोग किये थे। शान्ति दा (श्री शांतिमय घोष) ने सीलोन जाकर कैंडी के नृत्य का प्रदर्शन भी कई बार आश्रम के भिन्न-भिन्न उत्सवों में किया। इन विभिन्न नाटकों के लिए कलाभवन में एक बड़-से बक्से में भांति-भांति की रेशमी पोशाकें रहतीं—मुकुट, कुंडल, घुंघरू आदि। सज्जा कभी करती गौरी दी (श्री नंदलाल

सुविख्यात कलाविद् नंदलाल बोस वर्ग लेते हुए

बसु की बड़ी पुत्री), कभी हीरेन्द्र दा और कभी स्वयं मास्टर मोशाय (श्री नंदलाल बसु)। एक बार पठान की भूमिका में अवतरित एक लड़की का ऐसा सुन्दर मेक-अप हुआ कि स्वयं उसकी छोटी बहन भी उसे नहीं पहचान पाई। इन नाटक के पात्रों को नाटक के समाप्त होने पर अच्छी-खासी दावत भी मिलती थी। भोजनालय की अध्यक्षा सरोजिनी दी उन्हें बड़े प्रेम से खिलातीं। उन पर उनकी विशेष कृपा रहती—"कितना काम किया है बेचारियों ने! बेचारे लड़कों को तो और भी ज्यादा काम करना पड़ा!" अपनी बगल में छिपाकर वह हंडिया ले आतीं और उन रसीले रसगुल्लों की मिठास कौन भूल सकता है! उदास चेहरे पर एक स्वर्गीय मुस्कान झलकाकर सरोजिनी दी 'बाल्मीकी प्रतिभा' नाटक के अभिनय की प्रशंसा के पुल बांध देतीं—'सुशीला तो एकदम लक्ष्मी लग रही थी' और सरस्वती बनी प्रतिमा सेन राय 'आहा की मानिये छिलो।'—वह कहती और खिलाती जाती।

: १३ :

# आश्रम का प्रेमल वायु-मण्डल

अन्नपूर्णा-सी सरोजिनी दी को उनके बालक कभी नहीं भूलेंगे। आश्रम से उनका सम्बन्ध बहुत पुराना था। एकमात्र पुत्र रौमेन की आकस्मिक मृत्यु हो गई और बालिका पुत्रवधू रानी को लेकर वह श्रीनिकेतन से शांति-निकेतन आ गईं। गुरुदेव ने उनकी नियुक्ति भोजनालय की अध्यक्षा के रूप में कर दी, जिससे आश्रम के असंख्य बालक-बालिकाओं को खिलाती-देखती हुई वह अपना दुःख भूल सकें। दो-तीन माह बाद उनकी पौत्री 'स्मृति' ने जन्म लिया। पांच वर्ष की होकर वह भी एक बैलगाड़ी के नीचे दबकर जाती रही। सरोजिनी दी शोक से पागल हो गईं, किन्तु फिर भी उन्होंने गुरु-देव के सौंपे कार्य की कभी अवहेलना नहीं की। एक-एक छात्र के पास जाकर देखतीं, किसे क्या चाहिए। परिवेशन में त्रुटि देखतीं तो स्वयं दाल परोसने लगतीं या भागकर सब्जी ले आतीं। कितने यत्न और स्नेह से वह आश्रम के छात्र-छात्राओं को खिलातीं। कोई बीमार पड़ता तो भागी-भागी देखने जातीं। कभी खिचड़ी भेज रही हैं तो कभी दलिया। मार्च और अप्रैल के

महीने आश्रम-जीवन के सबसे भयंकर महीने लगते। ऐसी गर्म हवा चलती कि कान सनसना जाते, नलों का गुनगुना पानी प्यास लगने पर भी न पिया जाता। सरोजिनी दी न जाने कहां से नीबू मंगवाकर कभी शरबत बनवा देतीं, कभी मीठी लस्सी। "धूप में मत जाना", "आते ही पानी मत पीना", आदि हिदायतें देती रहतीं। लगता, जैसे हम घर में ही बैठे हैं और स्वयं मां ही हमारी देखभाल कर रही हैं।

एक सुखी सम्मिलित परिवार था आश्रम, जिसका एक-एक सदस्य एक-दूसरे से प्रेम की डोर से बंधा था। छात्र-छात्राओं की संख्या कम नहीं थी, पर सब एक-दूसरे को घनिष्ठ भाव से जानते थे। कभी-कभी आश्चर्य होता है कि जहां देश-विदेश के असंख्य छात्र-छात्रागण शिक्षा पा रहे थे, वहां देश, जाति या ऊंच-नीच की कभी कोई जटिलता ही उत्पन्न नहीं हुई। एकमात्र गेरुआ वसनधारी, सिरमुड़े बौद्ध छात्रों की कभी हँसी नहीं उड़ाई गई; पैरों में खड़ाऊं और लम्बी चुटियाधारी विद्याभवन के स्नातकों को लेकर कभी कोई भद्दी छींटाकशी नहीं हुई। जिस महिमामय व्यक्ति की उदार छाया में आश्रम पल्लवित हुआ था, वही छाया दिन-रात आश्रम की प्रहरी बनी रहती।

: १४ :

# गांधीजी और गुरुदेव

गांधीजी का जन्मोत्सव-समारोह शांतिनिकेतन में बड़े उल्लास से मनाया जाता। प्रार्थना-सभा प्रायः आम्र-कुंज में होती। एक बार गुरुदेव ने इसी सभा में कहा था, "आज महात्मा गांधी के जन्मदिन के समारोह में हम आश्रमवासी आनन्दोत्सव करेंगे। मैं आरम्भ के सुर को पकड़ना चाहता हूं। आज के उत्सव में जिनको लेकर हम आनन्द मना रहे हैं, उनका स्थान कहां है? उनकी विशिष्टता कहां है? जिस दृढ़ शक्ति के प्रभाव से गांधीजी ने समस्त भारतवर्ष को सचेतन बना दिया है, वह प्रचंड है। समस्त देश की समूची छाती पर पड़े जड़ता के भारी पत्थर को उसने हिला दिया है।" गांधीजी के अनशन के समय भी समस्त आश्रम में उदासी और चिंता की लहर दौड़ गई थी। आश्रमवासियों को एकत्र कर गुरुदेव ने प्रार्थना-सभा की थी—"जय हो उस तपस्वी की, जो इस समय मौत को सामने लेकर बैठे हैं! भगवान् को हृदय में बैठाकर समस्त हृदय के प्रेम को तपा कर, जलाकर। तुम लोग जयध्वनि करो

उनकी, जिससे तुम्हारा कंठ-स्वर उनके आसन के पास पहुंच सके। कहो—'तुमको ग्रहण कर लिया है, तुम्हारे सत्य को स्वीकार कर लिया है।' वह जिस भाषा में कह रहे हैं, वह कानों के सुनने की नहीं है,

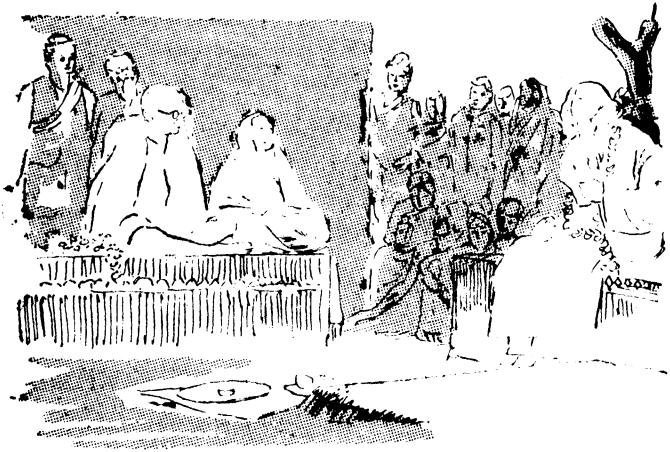

बा, बापू और गुरुदेव

वह है प्राणों के सुनने की। मेरी भाषा में जोर कहां है! वही मनुष्य की चरम भाषा है, जो अवश्य ही तुम्हारे प्राणों में भी पहुंच रही है।"

बोलते-बोलते गुरुदेव का स्वर कांपने लगा था। और फिर जब सन् १९४० के फरवरी मास में गांधीजी आश्रम में आये तो उत्सवों की बाढ़-सी आ गई थी। बड़ा भारी शामियाना लगाया गया था। पूज्य बा

भी पधारी थीं। तरह-तरह के 'आलपना' चित्रों से आश्रम संवारा गया और दो-तीन दिन तक नाना उत्सव चलते रहे थे।

: १५ :

# अनेक विभूतियों का आगमन

आश्रम-जीवन की एक विशेषता यह थी कि बड़े-से-बड़े व्यक्ति भी वहां आकर एकदम अपने बन जाते। मार्शल चांगकाई शेक और मैडम चांगकाई शेक आये तो उन्होंने आश्रम के विभिन्न भवनों में घूम-घूमकर छात्रों से परिचय प्राप्त किया। आश्रम की प्रार्थना-सभा में भाग लिया। पंडित नेहरू प्रायः ही आते थे। उनके आने पर भी आश्रम में अनोखा उत्साह छा जाता। सर्वपल्ली राधाकृष्णन आदि कई विद्वान, स्वनामधन्य व्यक्ति भी आश्रम में आते रहते और आश्रम के छात्रों को अपनी ओजपूर्ण वाणी सुनने का सुअवसर देते। श्री सुभाषचन्द्र बोस एक बार आश्रम में आये। सिनहा-सदन के बाहर खुले मैदान में शांति-निकेतन ने उनका स्वागत किया। संध्या से अभिनंदन आरम्भ हुआ। श्री सुभाषचन्द्र बोस ने अपने भाषण के

अंत में कहा, "अब मैं तो बोल चुका हूं। आप लोगों को कुछ पूछना है तो पूछिये।"

प्रश्नों की झड़ी लग गई। छात्र-छात्रागण प्रश्न पूछते और हँस-हँसकर उत्तर देते जाते श्री बोस। रात हो गई, पर प्रश्नोत्तर चलते रहे। आश्रम के उन्मुक्त आकाश के तले ऐसी सुन्दर और सजीव सभा चली कि किसीको समय का ध्यान ही नहीं रहा। तभी बजा खाने का घंटा। तब जाकर सभा विसर्जित हुई।

: १६ :

## छात्रों का उन्मुक्त जीवन

गांधीजी हों या पंडित नेहरू, आश्रम का घंटा अपने समय से ही बजता। हर घंटे का अलग-अलग सन्देश रहता। खाने का हो या छुट्टी का, सभा का हो या किसी विशेष उत्सव का, खतरे का घंटा भी कभी-कभी बज उठता और गुरुदेव के आश्रम के सधे सैनिक हर विपत्ति से जूझने के लिए तत्पर रहते। एक बार संथाल ग्राम के किसी पागल लड़के ने फूंस की झोंपड़ी में आग लगा दी। देखते-देखते आग की लपटें आकाश

छूने लगीं। लाल-लाल ज्वाला की लपलपाती जीभ देखते ही आश्रम के खतरे का घंटा बज उठा—**टंग**-टंग-टंग। उपेन्द्र दा की आग बुझाने की सधी टीम क्षण-भर में पहुंच गई और कुछ ही देर में आग पर काबू पा लिया गया।

उन्मुक्त वायु-मंडल में अध्ययन

जिस प्रकार अन्य शिक्षण-संस्थाओं में 'रेनी डे' या वर्षा की छुट्टी हो जाती है, ठीक उसी प्रकार आश्रम में भी एक विचित्र प्रकार की छुट्टी हो जाती थी 'भीगने की।' प्रखर धूप और लू की लपेट-झपेट के बाद झमझमाकर पानी बरसा तो आश्रम-वासियों को नई

जिन्दगी मिल गई। ऐसे सुहावने मौसम में भला पढ़ा जाता है कहीं। लिहाजा छुट्टी मिल जाती, लड़के-लड़कियों के झुंड-के-झुंड गुरुदेव के वर्षा के गीत गाते, हो-हल्ला मचाते, घूमने निकल पड़ते। कोई लाल-लाल पथ से, खोवाई की ओर और कोई भुवनडांगा के धान के खेतों की शोभा निहारते, बालों में काश गुच्छ लगाये सीधे बोलपुर की ओर। लौटकर अपने-अपने बस्ते सम्हालकर लाइब्रेरी से लेकर भीगे कपड़ों से सीधे अपने-अपने घर या छात्रावास। न कभी किसीको छींक-खाँसी का विकार ही व्यापता और न कभी कोई अन्य व्याधि ही उपजती। कक्षा में जाने से पूर्व सब छात्राओं को 'श्रीभवन' में एवं छात्रों को उनके छात्रावास में पंक्ति में खड़ा कर एक कांच के गिलास में 'पंचतिक्त' पिलाया जाता। ईश्वर जाने उसमें किन पंचतिक्त वस्तुओं का सम्मिश्रण रहता, किन्तु इस कड़वी घूंट को याद कर आज भी बदन सिहर उठता है। ऐसी भयंकर कड़वाहट से मुंह भर जाता कि नाश्ते में मिला मोहनभोग भी कड़वा लगता, किन्तु उसी पंचतिक्त का प्रताप था कि बीरभूम का प्रसिद्ध मलेरिया अपनी चपेट में आश्रमवासियों को बहुत कम ले पाता। कभी-कभी महामारी आदि फैलने पर आश्रम में गरमी की छुट्टियां जल्दी हो जातीं, गुरु-

देव कभी कालिंगपौंग, कभी मसूरी और कभी अलमोड़ा आदि पहाड़ी स्थानों पर चले जाते और जुलाई तक

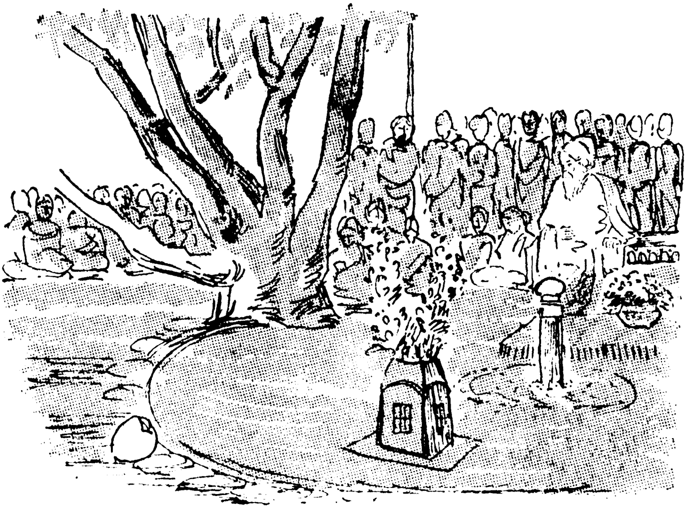

गुरुदेव का जन्मोत्सव

आश्रम एक प्रकार से वीरान हो जाता। पूजा की एक माह की छुट्टियों में दूर-दूर से आये छात्र-छात्राओं का छुट्टी बिताने घर जाना सम्भव नहीं होता। इससे उन्हें विशेष सुविधाएं दी जातीं। वे गुरुदेव की निजी लाइब्रेरी से पुस्तकें लाकर पढ़ सकते थे। अधिकांश पुस्तकें स्वयं लेखकों द्वारा गुरुदेव को समर्पित रहतीं। इससे एक-से-एक नई पुस्तकें पढ़ने को मिलतीं। पत्रिकाओं का तो

कहना ही क्या ! आस-पास कई ग्रामों में दुर्गा की मूर्त्ति बनती और आश्रम के एक प्रतिष्ठित जमींदार-परिवार के साथ ( श्रीयुत सरोजरंजन बाबू ) आश्रम के श्रीभवन की छात्राएं पूजा देखने जाती। फिर आता दशहरा। पूजा के उपलक्ष में मिली नई-नई रंग-बिरंगी साड़ियां पहने, केश खोले छात्राएं, अद्धी और रेशम के कुरते और मिही कन्नी की चुनी धोतियां पहने छात्र गुरुजनों को प्रणाम करने निकल पड़ते। पहले जाते गुरुदेव के पास। बोठान के पास जाकर फिर अनिल चंदा और रानी दी के चरण-स्पर्श कर 'विजयार प्रणाम' होता और फिर 'गुरुपल्ली' की ओर। कर्मसचिव सुरेन्द्र दा ( श्री सुरेन्द्र कर ), नन्दलाल बसु, भुवनडांगा के प्रभात दा (प्रभात मुकर्जी), सुधीर राय, सुधीर गुप्ता आदि अनगिनत अध्यापकों का स्नेहभरा आशीर्वाद और स्वादिष्ट मिष्टान्न प्राप्त कर टोलियां महा उल्लास से दशहरा मनाकर घर लौटतीं।

आश्रम के नियमों में पूजा की छुट्टी में थोड़ी-बहुत ढिलाई कर दी जाती।

एक बार पूजा के अवसर पर भुवनडांगा ग्राम में कहीं से एक प्रसिद्ध 'यात्रा दल' (नाटक-मंडली) आ गया। यात्रा प्रायः रात को देर से ही आरम्भ होती

और बारह-एक बजे तक चलती। आश्रम के छात्रावास की वार्डन थीं एक फ्रेन्च महिला क्रिश्चियाना बासनिक। गुरुदेव ने उनका नाम रख दिया था 'वासन्ती', पर पूरे आश्रम की थीं वह 'दीदी'—बड़ी ही स्नेहमयी, किन्तु अत्यन्त अनुशासनप्रिय। छात्राओं ने भुवनडांगा के यात्रा-नाटक देखने का प्रस्ताव किया तो उन्होंने इन्कार कर दिया। चुपके-चुपके लड़कियां गुरुदेव के पास पहुंचीं और अनुमति मिल गई। दीदी को भी फिर कोई आपत्ति नहीं रही। खाना खा-पीकर सबने गरम शाल ओढ़ लिये और टार्च लेकर छात्राएं, एक-दो नौकरानियां, कुछ छात्र एवं स्वयं दीदी भुवनडांगा की ओर चले। नाटक देखने का महा उत्साह था। एक तो कभी 'यात्रा' देखने का अवसर नहीं मिला था। थोड़ी देर में यात्रा आरम्भ हुई और रेशमी चमकती पोशाकें चमकाते एक राजा ने यह कहते प्रवेश किया, "रे तुई पाषंडी पामर।"—अरे, तू पाखंडी पामर। कंठ-स्वर इतना तीखा था कि कान के पर्दे फट गये, फ्रान्स की दीदी को यह चीखना-चिल्लाना कुछ अच्छा नहीं लग रहा था। अपनी साड़ी के पल्लू से दोनों कान दाबकर बैठ गईं। इतने में श्री राधा ने प्रवेश किया। किसी किशोर को यात्रा-मंडली ने राधा रूप

में चुना होता तो ठीक था, पर ऊंची-ऊंची साड़ी बांधे एक अत्यन्त हृष्ट-पुष्ट तरुण ने राधा के वेश में मंच पर आकर महा बेसुरे स्वर में गाना आरम्भ कर दिया। बीरभूम की बंगला का एक विशेष उच्चारण होता है। उसीमें श्री राधा अपनी सखियों से नक्की स्वर में गा-गाकर कहने लगी—

**'ओहे बागदी ठाकुर भी**
**नन्द गुंस्यार छयालार संगे**
**कखन हेशेछी,**
**ओलो हेशेछी तो बेश कोरेछी**
**तुदेर गैलो की'?**

—अरी बागदी (एक जाति विशेष) ननदिया, बता तो सही, मैंने नन्द के कुंअर से कब ठिठोली की और अगर हँस भी लिया तो तुम क्यों जली-भुनी जा रही हो ?"

राधारानी का यह अनुपम गीत बहुत दिनों तक आश्रमवासियों को लुभाता रहा। छात्रावास के हर कमरे से 'ओलो हेशेछी तो बेश कोरेछी' का स्वर गूंजता रहता और खूब ठहाके लगते रहे।

पूजा की छुट्टियों के बाद फिर एक बार आश्रम में चहल-पहल हो जाती। इन्हीं दिनों आश्रम का नया

सत्र भी आरम्भ होता। कई नई छात्राएं प्रवेश पाने आतीं और आश्रम की 'विश्वभारती' लिखी बस बोलपुर के कई चक्कर लगाकर छात्र-छात्राओं को भर-भरकर ले आती। बस के चालक थे 'नीलमनी-बाबू। साफ-सुथरे फक कपड़े पहने नीलमनीबाबू को हर छात्रा का रेल का समय याद रहता। कौन मद्रास मेल से आयगी और कौन पंजाब से। आश्चर्य-जनक प्रखर स्मरण-शक्ति थी उनकी। आश्रम के छात्र-छात्राओं की भी उनपर अत्यन्त श्रद्धा थी। लम्बी-सी बस को वह पोंछ-पांछकर चमकाकर रखते। उसी बस में बैठ-कर आश्रम से अंतिम विदा ली थी गुरुदेव ने! बाद में उसी चित्र को सदा अपनी पाकेट बुक में संजोकर रखते थे नीलमनीबाबू। न जाने कितने ख्याति-प्राप्त लोगों को अपनी बस में ले जाने का सम्मान प्राप्त था उन्हें। "गांधी बाबा को भी बिठाकर लाया हूं।" वह कहते और सतर होकर खड़े हो जाते। "यह बस क्या कोई ऐसी-वैसी है!" और हमपर उनका रौब छा जाता।

: १७ :

## श्रीनिकेतन का मेला

श्रीनिकेतन (शुरुल) का मेला भी आश्रमवासियों

का विशेष प्रिय उत्सव था। उस दिन तड़के ही टोलियां श्रीनिकेतन की ओर चल देतीं। दिन का भोजन वहीं मिलता, मार्ग में बैलगाड़ियों पर लदे बड़े-बड़े कड़ाहे, भगौने और उनपर बैठकर गाना गाते भोजनालय के भृत्यगण हमें दीख जाते। कई कटीले झाड़-झंखाड़ पार कर आधे मार्ग में मिलता छोटा-सा श्मशान। एक छोटी-सी दीवार से घिरा वह श्मशान था। एक कोने में एक-आध फूटी हंडिया, रस्सी के टुकड़े और इधर-उधर बांस पड़े रहते। छात्र हँसी-हँसी में 'बोलो हरि, हरि बोल' करने लगते तो सरोजिनी दी बहुत फटकारतीं—"शर्म नहीं आती, ऐसे स्थान पर मजाक किया जाता है! दुर्गा-दुर्गा कहो।" फिर क्या था, सहस्र कंठों से दुर्गा-जाप होने लगता। लाल-लाल कंकरीली मिट्टी की घूमती-घामती पगडंडी हमें 'श्रीनिकेतन' पहुंचा देती। सामने 'बड़ा कुठी' दीखते ही शोर मच जाता। श्रीनिकेतन की 'बड़ा साहबेर कुठी' (बड़े साहब की कोठी) एक विशाल प्रासाद-सी थी। तिमंजिली ऊंची कोठी में चारों ओर खिड़कियां-ही-खिड़कियां थीं, लोहे की घूम-घूमकर चक्कर खाती सीढ़ियां, बड़े-बड़े कमरे और लोहे के चित्र-विचित्र गिरजे के से द्वार। किसी जमाने में वह नील की खेती करनेवाले जॉनसाहब

की कोठी थी। बाद में आश्रम ने उसे खरीद लिया था। कोठी में जाकर खूब धमा-चौकड़ी मचती, गाने गाये जाते, ताश जमते और फिर उपासना-सभा में उत्सव होता। श्रीनिकेतन के मेले में खेल-कूद-प्रतियोगिता, श्रीनिकेतन में तैयार की गई तांत की सुन्दर साड़ियां, लाख के खिलौने, बर्तन आदि की नुमाइश होती। खाना खा-पीकर संध्या के समय आश्रमवासी घर लौटते।

: १८ :

## खेल-कूद और मनोरंजन

उत्सवों के अतिरिक्त आश्रम खेल-कूद में भी पीछे नहीं रहता। फुटबॉल की टीम में 'कानू दा' 'असीम' 'संतोष दा' जैसे खिलाड़ी भी थे, उनकी प्रसिद्धि कलकत्ता तक थी और कई बार कलकत्ता की प्रसिद्ध फुटबॉल टीमें आश्रम से बाजी हारकर ही लौटतीं। ऐसे अवसरों पर आश्रम के खुले मैदान में तिल धरने को भी जगह न रहती। ऐसा उत्साह रहता कि कभी पानी की झड़ी लग जाने पर भी खेल चलता ही रहता। वार्षिक खेल-कूद के उत्सव में भी आश्रम की शोभा देखते ही

बनती। श्री गुरुदयाल मल्लिक की 'कमेन्ट्री' (आंखों देखा हाल) का रस जिन्होंने ऐसे अवसर पर चखा है,

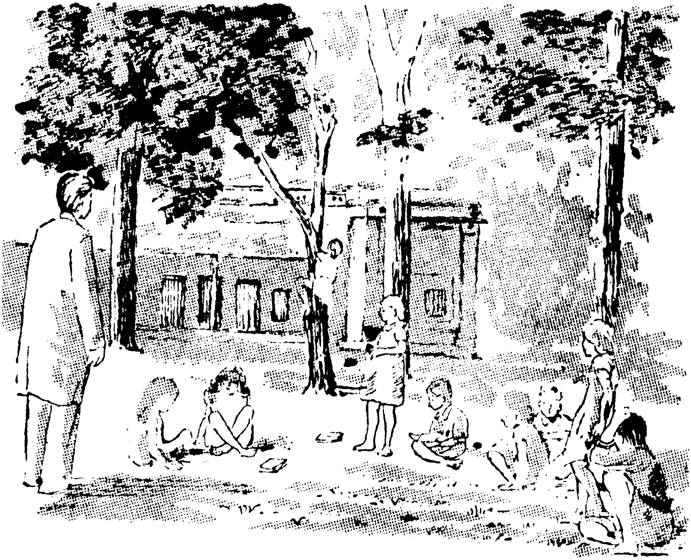

खुले में छात्रों का एक वर्ग

वे ही उसका आनन्द जान सकते हैं। कभी-कभी छात्र-छात्राओं का सम्मिलित हॉकी मैच भी होता। वैसे भी छात्रों को छात्राओं के साथ मिल-जुलकर खेलने पर कोई बंदिश नहीं थी। आएदिन सम्मिलित प्रतियोगिताएं होती रहतीं। गुरुदेव ने उत्तरायण में स्थित

अपने टेनिस लॉन को भी छात्र-छात्राओं के लिए खोल दिया था। टेनिस खेलने प्रायः अध्यापक भी आ जुटते और टेनिस के टूर्नामेंट होते रहते।

इन सब विभिन्न उत्सवों और खेल-कूद की प्रतियोगिताओं के अतिरिक्त छात्र-छात्राओं को बीच-बीच में अध्यापकों केसाथ ग्रामों में जाकर ग्राम—सेवा में भी भाग लेना पड़ता। मिस मार्जरी साइक्स एक क्वेकर महिला हैं। अंग्रेजी का अध्यापन कार्य करती थीं। साथ ही छात्र-छात्राओं को लेकर संथाल-ग्राम, गोवाल पाड़ा आदि ग्रामों में जातीं और ग्रामवासियों को कई उपयोगी बातें बतातीं। ऐसे ही 'दादी' (मैड-मोजेलबौसनिक) भी छोटे-छोटे स्वेटर बुनवाकर और स्वयं फ्रॉक, कुरते आदि सिलवाकर ग्राम-वासियों में बांटती। संथाल ग्रामवासियों को सफाई सीखने की आवश्यकता न रहती। इतनी स्वच्छ और सुन्दर झोंपड़ियां होतीं कि छूने से मैली होतीं। कांसे के चमचमाते लोटों में संथाल स्त्रियां आश्रम के अतिथियों के लिए 'रस' ले आतीं। इसी रस को धूप में रखने से ताड़ी बन जाती, जिसे वे 'मद' कहतीं, किन्तु ताजा रस अत्यंत सुस्वादु पेय होता। रस पिलाने के बाद अपने सुन्दर नृत्य में, मनोहारी गीतों से वे अथितियों का मनोरंजन करतीं।

काला चमकता पॉलिश किये आबनूस-सा काला रंग, बड़ी ही सुन्दर मरोड़ से बांधा गया जूड़ा और साफ सुन्दर ऊंची बंधी इकलाई धोती। उनसे जूड़े बांधने का ढंग सीखकर शान्तिनिकेतन की छात्राओं ने नये केश-विन्यास को चलाया, जो बाद को कलकत्ते के फैशनेबल वर्ग में अत्यंत लोकप्रिय होकर 'सांउताली खोपा' कहलाया। इसी संथाली अलमस्त किशोर-दल को देखकर गुरुदेव ने यह गीत लिखा था--

**ओगो सांउताली छेले--**<br>
**श्यामल सघन नव वरषार किशोर दूत की एले**<br>
**धानेर खेतेर पारे शालेर छायार धारे**<br>
**बांशीर सुरेते सुदूर दूरे ते**<br>
**चलेछे हृदय मेले।**

--"अरे, ओ संथाली किशोर, क्या तुम श्यामल सघन नई वर्षा के किशोर-दूत होकर आये हो ? धान के खेतों से होकर शाल-वृक्षों की छाया के किनारे खड़े हे संथाली किशोर, तुम्हारी बंशी का स्वर तुम्हारे हृदय से एक होकर बज रहा है।" प्राय : ही यह गीत गाते आश्रम के छात्र संथाल ग्राम से होकर निकलते तो संथाल स्त्रियां हँसने लगतीं। और कुछ समझें न समझें, 'सांउताली छेले' तो समझ ही लेतीं।

: १६ :

# आश्रमवासियों के लिए गुरुदेव के गीत

गुरुदेव ने अपने प्रिय आश्रमवासियों के लिए कई सुन्दर कविताएं विशेष रूप से लिखी थीं। इनमें से कुछ छात्र-समाज में विशेष लोकप्रिय थीं और 'पिकनिक' के अवसरों पर बड़े आनन्द से गाई जाती थीं।

**भालोमानुष नांई रे मोरा भालोमानुष नांई**
**गुनेर मध्ये एई आमादेर गुनेर मध्ये एई**
**देशे देशे निंदे रहे, पदे पदे विपद घटे**
**पूंथीर कथा कईने मोरा उलटो कथा कई**
**छूटी निलेन बृहस्पति, रईल शनीर दृष्टि**
**अयात्रा ते नौका भाषा, राखीने भाई फलेर आशा**
**आमादेर आर नांई ये गति भेसेई चलाबई।**

—"हम भलेमानुस नहीं हैं एक ही गुण है हमारा। वह है देश-देश में हमारी निंदा होती है भाई और पद-पद पर हम विपत्ति का सामना करते हैं। किताबी ज्ञान हम नहीं बघारते, किताब में लिखे का ठीक उल्टा करते हैं। हमारे जन्म के समय बृहस्पति छुट्टी पर थे, इसीसे शनि की दृष्टि ही हम पर रही। हमारी नौका अयात्रापर चली है, भाई। फल की तो हम आशा ही

नहीं रखते । हमारी गति है ही नहीं । सदा तैरते रहना, यही हमारी गति है !

इसी प्रकार एक दूसरा गीत था—

**ना गान गाउवार दल रे आमरा, ना गला साधार**
**मोदेर भैरव रागे, रविर रागे मुख आधार**
**आमादेर एई अमिल कंठ समवायेर चोटे**
**पाड़ार कुकूर समस्वरे फुकरे उठे—**
**आमरा केवल मरि भये धूर्जटिदादार ।**
**मेघमल्लार धरि यदि, घटे अनावृष्टि**
**छातिवालार दोकान जुड़े लागे शनीर दृष्टि**
**आधरवाना सुर जेमनि लाई बसन्त बहारे**
**तत्क्षणात् विच्छेद ताप पालाय श्रीराधार**
**अमावास्या रात्रे जेमन बेहाग गाहते बशा**
**कोकिल गुलोर लागे दशम दशा**
**शुक्ल कोजागरी निशाय धरी जैजैवंती**
**राहुलागार वेदन लागे पूर्णिमा चांदार-**

—"हमारा गवैयों का दल नहीं है, भाई । हमने कंठ की गायकी को नहीं साधा । हम भैरव गाते हैं तो सूर्य का मुंह क्रोध से लाल हो जाता है । हमारे मिले-जुले बेसुरे कंठों की गायकी से मुहल्ले के कुत्ते चौंककर भौंक उठते हैं। हम मेघमल्लार गाते हैं तो वर्षा बन्द

हो जाती है। छातेवालों की दुकान पर शनि की दृष्टि लग जाती है—'बसन्त बहार' का आधा ही स्वर लगा पाते हैं कि श्री राधा का विरह दूर हो जाता है। अमावस्या की रात्रि को विहाग गाने लगते हैं तो कोयलों को दशम दशा घेर लेती है और कोजागरी पूर्णिमा के दिन अगर हमने कहीं जैजैवंती गा ली तब तो पूर्णिमा के चन्द्र को राहु ही ग्रस लेता है।"

आज समस्त भारत का गौरव-गान हमारा राष्ट्रीय गीत 'जनगण मन अधिनायक' आश्रम के विशेष उत्सवों पर गाया जाता था, तब पूरा गीत दो बार दोहराकर गाया जाता था। इसी प्रकार 'वंदेमातरम' की ठीक स्वरलिपि एवं उसका नियमित अभ्यास बूड़ी दी या शांतिदा के पास बैठकर करना पड़ता था। तब उसको अंतरा 'त्रिंशकोटिभुजै' भी गाया जाता था। 'आमादेर शांतिनिकेतन' गीत तो आश्रम के प्रत्येक पर्व उत्सव, मेले, पिकनिक का आश्रम गीत था, विश्वभारती की नारंगी कॉपियों के पीछे पत्रिकाओं के अंतिम पृष्ठ पर यही गीत लिखा रहता था। आश्रम छात्रों की हृदय की भावनाओं को, उनके आश्रमकालीन जीवन के सुख और उल्लास को ही गुरुदेव ने कविता में, स्वरों के मीठे जाल में, बुनकर रख दिया था—

आमादेर शांतिनिकेतन
सब होते आपन आमादेर शांतिनिकेन
तार आकाशभरा कोले
मोदेर दोले हृदय दोले—
मोरा बारे-बारे देखी तारे
नित्यई नूतन
मोदेर तरुमूलेर मेला, मोदेर खोला माठेर खेला
मोदेर नीलगगनेर सोहाग माखा सकाल संध्यावेला
मोदेर शालेर छाया बीथी बाजाय
बनेर कल गीती
सदाई पातार नाचे मेते आछे आमलकीकानन
आमरा जेथाय मरी घूरे
शेजे जाय ना कभू दूरे
मोदेर मनेर मांझे प्रेमेर सेतार बांधा जेतारसुरे
मोदेर प्रानेर संगे प्राने सेजे मिलियेछे एकताने
मोदेर भाइयेर संगे भाई के शेजे करेछे एकमन
आमादेर शांतिनिकेतन।
—"हमारा शांतिनिकेतन
हमारा सबसे प्यारा अपना शांतिनिकेतन
इसकी आकाशभरी गोद में
हमारे हृदय नाच उठते हैं

हम इसे बार-बार निहारते हैं
और नित्य नवीन पाते हैं--
हमारे तरुवर, हमारे खुले मैदान
और उनमें हमारा खेलना--
हमारे सांझ-सबेरे का सोहागभरा नीलगगन।
हमारे शाल बीथी बन के कल गीत सुनाती है

शाल-वीथी में गुरुदेव

हमारा आंवले का कुंज जो सदा नाचते
पत्तों की खुशी से मतवाला रहता है
हम कहीं भी हों--
हमारा आश्रम हमसे कभी दूर नहीं रहता।

उसके प्रेम का सितार
हमारे मन के स्वरों से बंधा है
हमारे प्राणों से
उस सितार की धुन एक होकर मिल गई है।
भाई भाई को
आश्रम ने एक मन एक प्राण
कर दिया है।"

यही थी आश्रमगुरु की वाणी। आश्रमवासी कहीं भी रहें, आश्रम उनके हृदय में ही रमता। रवीन्द्र-संगीत की स्वर-लहरी देश-विदेशों में गूंजने लगी। आश्रम के बहुत पुराने छात्र पिनाकी ने रवीन्द्र-संगीत को गुजराती में प्रस्तुत किया। उत्तरायण में बम्बई से आई उनकी छात्राओं ने गुजराती में एक संगीत-नाटिका का प्रदर्शन किया। इसी प्रकार कलकत्ता, मद्रास, बर्मा आदि की छात्राओं ने वहां 'रवीन्द्र-साहित्य-बासर' की स्थापनाएं कीं।

: २० :

## छात्रों का अतिथि-प्रेम

शांतिनिकेतन के पुराने छात्र-छात्राएं आश्रम के अन्य किसी छात्र-छात्राओं से मिलने पर अपूर्व प्रेम

दिखाते। शांतिनिकेतन के एक बहुत पुराने छात्र बी० गोपाल रेड्डी हम शांतिनिकेतन के कुछ छात्र-छात्राओं को अपने नीलोर-स्थित विशाल प्रासाद 'सुदर्शन महल' में बंगलोर से कार द्वारा ले गये और बड़े प्रेम से हमारी आवभगत की। आश्रमवासी भी अतिथियों के आदर-सत्कार में कभी त्रुटि न होने देते। एक बार राष्ट्रपति श्री राजेन्द्रप्रसादजी आश्रम में पधारे। बिहार की छात्राओं ने विभिन्न स्वादिष्ट बिहारी व्यंजन बना दिये। श्रीभवन के बाहर बड़ी-सी दरी बिछा दी गई। जलपान के लिए राष्ट्रपति ने छात्रावास का निमंत्रण स्वीकार किया था। उन दिनों वह अस्वस्थ थे। बार-बार खांसी उठ रही थी। फिर भी बड़ी देर तक उन्होंने प्रत्येक छात्रा की 'आटोग्राफ बुक' में अपने हस्ताक्षर किये और छात्राओं की बनाई चीजें चखीं। लार्ड लोदियन, सर मारिस ग्वायर, जेनेवा से आये प्रतिष्ठित वैज्ञानिकों का शिष्टमण्डल, सब आश्रम देखकर मुग्ध हो जाते।

: २१ :

## गुरुदेव की आत्मीयता

बाद में गुरुदेव प्रायः अस्वस्थ रहने लगे और उनके

पास आने-जाने की सुविधाएं बहुत कम हो गईं। उनके पास दिन-रात रहती उनकी पुत्रवधू प्रतिमा दी, पौत्री नंदिता कृपलानी और रानी चन्दा। उनके मुंहलगे नौकर बनमाली ने भी शासन की डोर कड़ी कर दी।

एक दिन नौकर की कड़ी डांट गुरुदेव ने भीतर से सुन ली, उलटा उसे ही डपट दिया, "आने क्यों नहीं देता ? चले आओ भीतर।" हमारे भीतर जाने पर बड़े प्रेम से कुशल पूछी और फिर एकाएक बोले, "जयंती से बर्दवान के भूत की कथा सुनी या नहीं ?" हमारे 'ना' कहने पर स्वयं ही उस भूत-कथा को सुनाने लगे। मेरी बड़ी बहन जयन्ती बर्दवान में संस्कृत की काव्य-तीर्थ परीक्षा देने गई थी, स्वयं गुरुदेव ने ही उनके रहने की व्यवस्था कह-सुनकर वहां के राजमहल में करवा दी थी। भुतहेमहल में एक भूत की विचित्र लीला देखकर वह लौटी थी। गुरुदेव ने इतने रोचक ढंग से हमें उस भुतहेमहल की कहानी सुनाई कि रोंगटे खड़े हो गये। लग रहा था कि हम उत्तरायण में नहीं, बर्दवान के राजमहल में बैठे हैं और एक चर्म-मांस-हीन ठठरी सचमुच ही हमारे आस-पास घूम रही है। ऐसे ही एक बार गुरुदेव ने अपने एक प्रसिद्ध गीत की आवृत्ति करके सुनाई थी—'हृदय आमार ना चीरे

आजीके मयूरेर मत नाचीरे ।' अर्थात्—'मेरा हृदय आज मोर की भांति नाच उठा है ।' जिन्होंने गुरुदेव के मुंह से यह कविता सुनी है वे ही जान सकते हैं कि गुरुदेव का मधुर स्वर कितनी सुन्दरता से अपनी कविता के उतार-चढ़ाव को व्यक्त कर सकता था ।

प्राक्तनी का शिलान्यास

उत्तरायण के पिछले भाग में एक बहुत ही सुन्दर बाग था । उसी में विचित्र खिड़कियों और द्वारों से शोभित एक खुला दुमंजिला कमरा भी था । पास में एक छोटा-सा तालाब बनवा दिया गया था, जिसमें

बड़े सुन्दर कमल खिलकर तैरने लगते थे। उस बाग के मनोहर फूलों के बीच खड़े होकर तस्वीर खिचवाने का शौक आश्रम के छात्र-छात्राओं में ऐसा फैला कि बाद में गुरुदेव से अनुमति लेकर तस्वीर खिचवाने का नियम बना दिया गया। आश्रम के कुशल फोटोग्राफर शंभुसाहा के आते ही सब अनुमति लेने दौड़ते। गुरुदेव को यह नियम कुछ पसन्द नहीं आया। उन्होंने सबसे कह दिया, "जब जी में आये, तुम यहां आकर तस्वीर खिचवा सकते हो।" फिर क्या था! शायद ही कोई ऐसा छात्र रहा होगा, जिसके पास उत्तरायण के उस सुनहले बाग की तस्वीर न हो।

आश्रम के छात्र-छात्राओं का नियम था कि प्रत्येक वर्ष ग्रीष्म की छुट्टियां होने से पूर्व उत्तरायण के बरामदे में गुरुदेव के साथ तस्वीर खिचवाते थे। अस्वस्थ होने पर भी गुरुदेव ने कभी अपने छात्र-छात्राओं को निराश नहीं किया। यही नहीं, एक बार एक चित्र के खराब हो जाने पर जब कुछ लोग उनके पास फिर तस्वीर खिच-वाने का आग्रह करने गए तो उनके पुत्र रथीदा ने बुरी तरह झिड़क दिया। पर न जाने कहां से गुरुदेव ने सुन लिया और वनमाली को नीचे भेजकर कहलवाया "दोपहर में तीन बजे बाद कभी भी तुम लोग आ जाना।"

ऐसी थी उनकी महानता और असीम उदार मनोवृत्ति। यही हाल हस्ताक्षरों की पुस्तिकाओं का रहता। हर

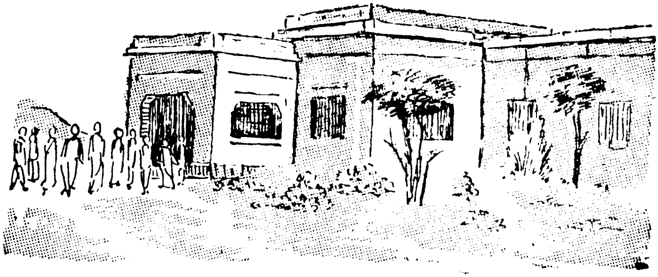

कला भवन

छात्र यही चाहता कि गुरुदेव कुछ लिख दें, हर छात्रा चित्र बना देने के लिए मचलती। प्रायः ही गुरुदेव 'आशीर्वाद' लिखकर हस्ताक्षर कर देते।

गुरुदेव के पास विदेश की बहुत डाक आती थी। छात्र-छात्राओं का दल उनके पास पहुंचकर टिकटों के लिए बहुत ऊधम मचाता। एक दिन उनकी डाक में आये एक 'त्रिकोण टिकट' के लिए ऐसी छीना-झपटी हुई कि उन्होंने टिकट बांटना ही बन्द कर दिया। क्रोध आने पर गुरुदेव प्रायः ऐसी ही सजा दे देते थे।

: २२ :

# दण्ड-व्यवस्था

एक बार 'श्रीभवन' (आश्रम का छात्रावास) के धोबी के हाथ में सुई चुभ गई। उसका कहना था कि वह छात्राओं के कपड़े धो रहा था कि एक छोटे रूमाल से लगी सुई घप से उसकी हथेली में पूरी घुसकर उसके शरीर में चली गई थी। वार्डन ने घबराकर गुरुदेव को सूचना दी। उनके आदेशानुसार एक घण्टे के भीतर प्रत्येक छात्र से दो-दो रुपया हर्जाना, लेकर चन्दे की एक अच्छी-खासी रकम इकट्ठी कर दी गई। धोबी को कलकत्ते भेजकर उसी रात ऐक्सरे कराया और फिर आपरेशन कराकर सुई निकलवा दी गई। दो सप्ताह तक श्रीभवन की छात्राओं को धोबी की सुविधा नहीं मिली। अब हर छात्रा कपड़े देने से पहले उलट-पुलट कर देख लेती थी।

आश्रम के छात्र-छात्राओं एवं अध्यापकों के छोटे-मोटे झगड़े या समस्याएं प्रायः अध्यापकों की मीटिंग में ही सुलझा लिये जाते थे। अध्यापकों की इस मीटिंग के लिए 'चाचक्र' की विशेष रूप से सृष्टि हुई थी। गोल-गोल बना दुमंजिला—बहुत बड़ा कबूतर खाना-सा

था 'चाचक्र'। उसके भीतर गोलाकार पत्थर की बेंचें-सी बनी थीं। वहीं पर प्रत्येक महीने अध्यापक छात्र-छात्राओं की पढ़ाई-लिखाई की गति-विधि का लेखा-जोखा रखते थे। किसी भी छात्र एवं छात्रा से यदि कोई गलती हो जाती तो इसी 'चाचक्र' की मीटिंग में उस पर विचार कर उसे समझा दिया जाता। इसे चेतावनी कहा जाता था और किसीको यह चेतावनी मिलना अत्यन्त लज्जास्पद घटना समझी जाती थी।

: २३ :

## छात्रों को सुविधाएं

आश्रम में बीच-बीच में कभी किसी आकस्मिक दुर्घटना से हलचल मचती तो उसका स्वयं ही शांत हो जाना आश्रम का नियम-सा हो गया था। एक बार उत्तर प्रदेश के एक अत्यन्त संभ्रांत एवं समृद्ध परिवार के बालक छात्र को आश्रम में बन्दूक की गोली लग गई थी। गुरुदेव के एक निकट के आत्मीय एक पागल कुत्ते को गोली मारने भागे तो बीच ही में न जाने कहां से वह बालक आ गया, गोली उसे लगी और वह गिर पड़ा। रात-ही-रात उसे कलकत्ते ले जाया गया, आपरेशन कर गोली निकाल दी गई और वह स्वस्थ होकर घर लौट गया। कभी भी किसी छात्र एवं छात्रा को यदि

विशेष चिकित्सा की आवश्यकता होती तो उसे कलकत्ते के प्रसिद्ध सर्जन एवं विशेषज्ञों के पास जाने की सुविधा रहती। गुरुदेव ने कई बार सर नीलरतन सरकार एवं डा० अधिकारी जैसे प्रसिद्ध डाक्टरों को पत्र लिखकर आश्रम की छात्राओं एवं छात्रों को चिकित्सा-सम्बन्धी सुविधाएं दिलवा दी थीं। कभी-कभी वे स्वयं भी होमियोपैथी की मीठी गोलियां दे देते थे।

: २४ :

## 'गुरुदेव आमादेर मां'

अस्वस्थ होकर बिस्तरे से लगने से पहले गुरुदेव ने शिशु-भवन की एक सभा का सभापतित्व ग्रहण किया था। जहांतक मुझे स्मरण है, उस सभा के बाद गुरुदेव अन्य सभा या उत्सव में फिर नहीं आ सके थे। वैसे तो आश्रम की प्रत्येक साहित्य-सभा का अपना पृथक् व्यक्तित्व था, किन्तु शिशु-भवन की सभा की निराली ही शोभा रहती। सफेद गरद की साड़ी पहने 'मासीमा' अपनी पूरी बाल-सेना को पंक्तिबद्ध कर ले आती। छोटे-छोटे बालक, चुनी धोती और कुरता पहने सभा सजाने में जुट जाते।

एक तो शिशु-भवन की सभा, उस पर सभापति

स्वयं गुरुदेव ! लाइब्रेरी के सामने ही उनकी सभा सजी थी। एक-एक करके छोटे बालक एवं बालिकाएं आतीं और छोटे-छोटे लेख, कहानी, आवृत्ति सुना-सुनाकर सुननेवालों का मन मोह लेतीं। आश्रम में कभी प्रशंसा व्यक्त करने को तालियां नहीं बजाई जाती थीं। गुरुदेव को दो चीजों से सख्त नफरत थी, एक ताली और दूसरी,

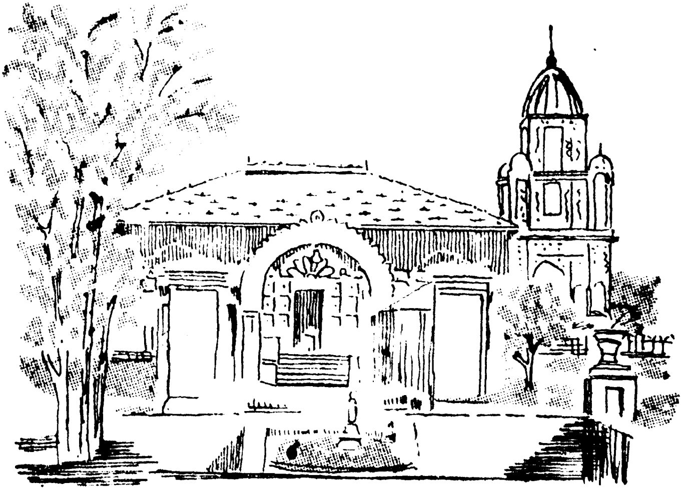

प्रार्थना भवन

'हारमोनियम'। ताली के स्थान पर सब एक स्वर में 'साधु-साधु' कहते। शिशु-विभाग की इस सभा में मंच पर चीना-भवन के प्रोफेसर तान का नन्हा पुत्र तानली आया और अपना लेख खूब ऊंचे सधे स्वर में पढ़ना

आरम्भ किया। लेख का शीर्षक था, 'गुरुदेव—"गुरुदेव बड़ भालो।"—"गुरुदेव बड़े भले हैं।"

उस रचना की पहली पंक्ति थी।

"आमरा गुरुदेव के भालो बाशी।" —"हम गुरुदेव को प्यार करते हैं।"

रचना की अन्तिम पंक्ति थी :

"गुरुदेव आमादेर मां।"—"गुरुदेव हमारी मां हैं।"

रवीन्द्र-शताब्दी की पुण्य-तिथि पर आज देश-विदेश के पण्डित, साहित्यिक सोच में डूबे हैं कि किन शब्दों में सरस्वती के वरद् पुत्र की आरती उतारें ?

पर उनके आश्रम के एक नन्हे-से छात्र ने वर्षों पूर्व अपनी आडम्बरहीन सरल स्नेह की डोर से उन्हें नापकर रख दिया था—'गुरुदेव आमादेर मां।" पिता के स्नेह में शासन का पुट रहता है, कड़ी देख-रेख की लगाम रहती है, किन्तु माता का स्नेह रहता है सरल, क्षमाशील। नन्हा तानली भी शायद जानता था, उनके स्नेह की गहराई को। 'क्वचिदपि कुमाता न भवति।' पुत्र कुपुत्र हो सकता है, किन्तु माता कभी कुमाता नहीं हो सकती।

: २५ :

# सादा पर कलापूर्ण रहन-सहन

विशेष उत्सवों पर अध्यापकों को एक विशेष प्रकार का चोगा पहनना पड़ता था, वैसे आम तौर पर ढीला कुर्ता और धोती ही अध्यापकों की पोशाक थी। कभी-कभी कोई अध्यापक अचकन और पायजामा भी पहनते। डॉ० ऐलेक्स ऐरनसन जर्मनी से आये सीधे शांतिनिकेतन। पहले कुछ दिन साहबी पोशाक में रहे, फिर वह भी ढीला पायजामा और कुर्ता पहनने लगे। कभी-कभी चन्दन का टीका उनके चौड़े माथे पर बहुत फबता था।

जैसे हर अध्यापक की अपनी-अपनी पसंद थी, वैसे ही छात्र-छात्राओं पर भी पोशाक की कोई कड़ी पाबन्दी नहीं थी; किन्तु आश्रम का सीधा-सादा रहन-सहन ही कुछ ऐसा था कि उसमें ऐंठभरे बांकेपन के लिए कोई गुंजाइश ही न रहती। सीधी-सादी सूती धोती और चप्पल। एक-दो ने ऊंची एड़ियों के जूते पहनने का दुस्साहस भी किया, पर स्वयं ही उनका मन नहीं माना। कुछ ही दिनों में आश्रम की सादगी से वे अछूती न रह सकीं। सीधे-सादे कपड़ों को कुछ ऐसे कलात्मक ढंग से पहनने

की शिक्षा मिलती कि सस्ता कपड़ा भी कीमती लगने लगता। नारंगी रंग गुरुदेव को बहुत प्रिय था। उनके पास स्वयं भी इसी रंग के रेशमी झब्बे थे। यही रंग छात्रों को भी बहुत प्रिय था। लड़कियों में नारंगी खद्दर के ब्लाउज पहने जाते और छात्रों में एक विशेष ढंग से सिले ढीले कुरते का चलन था, जिसकी बांह मुहरी से तंग और ऊपर से ढीली रहती। शांति-निकेतन की शिक्षा-प्रणाली ही नहीं, वहां की वेश-भूषा का भी अपना अनोखापन था। इसीसे जब आरम्भ में अपना को परीक्षा-केन्द्र न होने से छात्राओं को कलकत्ता ईके 'विद्यासागर कॉलेज' में परीक्षा देने जाना पड़ता तो वहां की भड़कीली पोशाक पहने छात्राएं आश्रमकी सरल सौम्य छात्राओं को देखती रह जातीं। उनके भड़कीले कपड़ों में वह अनोखी मोहकता न होती, जो आश्रम की छात्राओं की साधारण-सी सूती धोती में। छात्राएं समय-समय पर स्वयं नये ढंग से बाल बनाने का, नई तरह से कपड़े पहनने का, ढंग चलाती रहतीं। उनके खद्दर के सामान्य-से ब्लाउज में भी शांतिनिकेतन की कढ़ाई से चार चांद लग जाते। हाथ के चमड़े के बटुए में शांतिनिकेतन की कला की छाप रहती।

: २६ :

# आश्रम पर काले बादल

आश्रम के इसी अनोखे आकर्षण से खिच-खिच कर देश-विदेश के छात्र-छात्राएं आकर जुटने लगे, किन्तु आनंद-उत्सव के बीच सहसा आश्रम का तेजपुंज मन्द पड़ने लगा। गुरुदेव की अस्वस्थता बढ़ गई। आश्रमवासी प्राय: बैतालिक करते गाते-गाते उत्त-रायण तक जाते, किन्तु गीत के स्वरों में अब वह ताजगी नहीं रह गई थी। बड़े-बड़े डाक्टर आते और चिन्ता में डूबकर रह जाते। एक ओर आश्रम का नया बिजलीघर बन रहा था। उसको देखकर गुरुदेव ने कहा था, "तुम्हारा नया बिजलीघर बन रहा है। अब तो आश्रम में बिजली का कष्ट नहीं रहेगा।" किन्तु आश्रम की रोशनी तो बुझी जा रही थी। आश्रम के उत्सवों में वह आनन्द नहीं रहा था। जिसे देखो वह यही कहता, "न जाने क्यों, एक अमंगल की-सी आशंका हो रही है।" सुनने में आ रहा था कि गुरुदेव को कलकत्ता ले जाया जायगा। झुंड-के-झुंड दर्शनार्थी उत्तरायण जाते और उदास होकर लौटते। उनके अत्यन्त पुराने सहयोगी अध्यापक, जिनमें से कई

उनके छात्र भी रह चुके थे, पढ़ाते-पढ़ाते चुपचाप किताब बन्द कर छुट्टी कर देते। 'उपासना-मंदिर' में

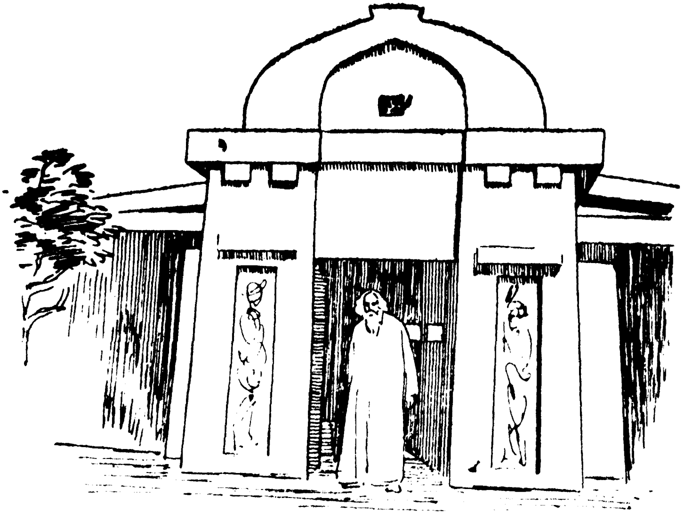

श्यामली : गुरुदेव का अत्यन्त प्रिय स्थान

शान्त भव्य मूर्त्ति खितीमोहनबाबू की आंखें भर आतीं, न जाने कितनी पूर्व-स्मृतियां उन्हें बेचैन कर देतीं। श्री प्रभात मुकर्जी इतिहास पढ़ाते-पढ़ाते चश्मा हटाकर आंखें पोंछने लगते, "गुरुदेव कल कलकत्ता जा रहे हैं।" कितने पुराने अध्यापक थे वह। सदा हँसने-हँसाने वाले हमारे इतिहास के बुजुर्ग प्रभातदा जैसे कुछ ही दिनों में बूढ़े हो गये। गुरुदेव की बीमारी के काले बादलों

ने पूरे आश्रम को घेर लिया। और एक दिन गुरुदेव के कलकत्ता जाने की सचमुच तैयारियां हो गईं। पूरा आश्रम उत्तरायण के बाहर एकत्र था। एक-एक कर सबने जाकर गुरुदेव के पावन चरणों की धूलि ली और धीरे-धीरे विश्वभारती की लम्बी बस गुरुदेव को लेकर आंखों से दूर हो गई।

: २७ :

## गुरुदेव चले गए

एक दिन वह आया जब आश्रम मणि हीन मुकुट-मात्र रह गया। आश्रम के पेड़-पत्ते तक शोकमग्न हो उठे।

जिस दिन गुरुदेव के अस्थि-अवशेष को लेकर उनके आत्मीय स्वजन लौटे, आश्रमवासी सड़क के दोनों ओर लम्बी कतार में शोक-मग्न सिर झुकाये खड़े थे। आश्रम-गुरु नहीं रहे, पर आश्रम निष्प्राण होकर भी स्वयं उन्हींकी वाणी से प्राणमय था—

**"आमार जाबार समय होलो**
**आमार केनो राखीस धरे—**
**चोखेर जलेर बांधन दिये**
**बांधीस ने आर मायार डोरे**
**फूरियेछे जीवनेर छूटी**

**फिरिये ने तोर नयन टूटी**
**नामधरे आर डाकीसने भाई**
**जेते हौबे त्वरा करे ।"**
—"मेरे जाने का समय हो गया,
अब मुझे पकड़कर क्यों रखते हो ?
अपने आंसुओं की मायाडोर
के बन्धन से मुझे मत बांधो ।
जीवन की छुट्टी समाप्त हो गई है ।
अपनी आंखें फेर लो, मुझे मत देखो ।
मुझे नाम लेकर मत पुकारो, भाई
मुझे अब जल्दी जाना है ।"

गुरुदेव चले गए, पर नहीं, वह ज्योति कभी बुझ नहीं सकती । उनकी वाणी और उनकी कृतियां सदा अमर रहेंगी । उनका पावन संदेश युग-युगान्तर तक लोगों को अनुप्राणित करता रहेगा । मृत्यु-शैया पर लिखा गया उनका गीत सर्वदा दिग-दिगन्त में गूंजता रहेगा—

**समुखे शान्ति पारावार**
**भाषाओ तरनी हे कर्णधार।**
—"सामने शांति का सागर लहरा रहा है ।
हे नाविक, नाव को उसमें बहने दो ।"

●